महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६२ **अंक** : १३
दयानन्दाब्दः १९६
विक्रम संवत्: आषाढ़ शुक्ल २०७७
कलि संवत्: ५१२१
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

जुलाई प्रथम २०२०

अनुक्रम

०१. रूढ़िवादी पौराणिकों द्वारा..	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५१	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. विद्या-अविद्या और बन्ध-मोक्ष...	जगदेवसिंह सिद्धान्ती	१६
०५. कोरोना विषाणु (वायरस) का...	नवीन मिश्र	२६
०६. स्वामी विरजानन्द दण्डी	सोमेश पाठक	२९
०७. शोक समाचार	कन्हैयालाल आर्य	३१
०७. संस्था की ओर से...		३३

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com
उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

रूढ़िवादी पौराणिकों द्वारा भारतीय समाज से विश्वासघात-१

देश का पतन करने वाले कुछ बाहरी कारण रहे हैं। विदेशी मूल के आक्रान्ताओं द्वारा आक्रमण और उनमें हमारी पराजय तथा उनके द्वारा अपने-अपने मत में येन-केन-प्रकारेण मतान्तरण करके भारतीय समाज में अपना एक वर्ग खड़ा कर लेना, जो आज उन्हीं के प्रति निष्ठावान् है, भारत और भारतीयों के प्रति नहीं। किन्तु हमें आज ईमानदारी से यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि बाहरी कारणों से पहले उनके लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने वाले, हमारे ही लोगों द्वारा निर्मित किये, आन्तरिक कारण भी रहे हैं, जो बाहरी से गम्भीर और उनके मूलप्रेरक कहे जा सकते हैं। उन कारणों में से एक है- रूढ़िवादी पौराणिक विचारधारा। रूढ़िवादी विशेषण इसलिए लगा रहा हूँ, क्योंकि इस विचारधारा में जो निहित स्वार्थी अनुयायी थे उन्होंने पुराणों में वर्णित समाज-हित-कारी निर्देशों का भी पालन नहीं किया। उदाहरण के रूप में, जैसे पुराणों में वर्णाधारित-व्यवस्था का निर्देश है, सबको वेद पढ़ने का अधिकार है, सबको यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान करने का उल्लेख है। एक-दो प्रमाण देकर आगे बढ़ता हूँ। स्कन्द पुराण में वर्ण आधारित व्यवस्था का समर्थन करते हुए बहुत स्पष्ट कहा है-

''जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विजः उच्यते।''

(नागरखण्ड २३९/३१)

अर्थात- किसी भी कुल में उत्पन्न हुआ बालक जन्म से शूद्र ही कहाता है। यज्ञोपवीत संस्कार करके शिक्षित होने के बाद, प्राप्त शिक्षा के अनुसार वह उस द्विज वर्ण का बनता है। भविष्यपुराण आदेश देता है...

''ब्राह्मणाःक्षत्रियाःवैश्याःशूद्राः, तेषां मन्त्राः प्रदेयाः।''

(उ. पर्व १३/६२)

अर्थात्- 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण होते हैं। इन सबको वेदमन्त्रों का अध्ययन कराना चाहिये। वेद पढ़ेंगे तो यज्ञोपवीत, यज्ञ आदि के अधिकार स्वतः प्राप्त होंगे।

रूढ़िवादी पौराणिकों ने अपने निहित स्वार्थ के लिए वर्ण के स्थान पर जन्माधारित जातिवाद का प्रचलन कर दिया तथा वेद और धर्म का मिथ्या नाम लेकर अधिकांश समाज को शिक्षा देना वर्जित कर दिया। उनके परिणामस्वरूप भारतीय समाज परस्पर विघटित, भेदभाव पीड़ित और ज्ञानहीन होता गया। एकता और सामाजिक सद्भाव नष्ट हो गया। उनके द्वारा समाज में बोया हुआ विघटन, भेदभाव का वह बीज आज देश के लिए नासूर बन गया है। आज के सामाजिक द्वेष और वैमनस्य का वातावरण इसी विचारधारा की देन है। इन्होंने अपनी सुख-सुविधा, उच्चता, निहित स्वार्थ, अधिकारों के लिए दूसरे वर्गों के अधिकारों का हनन किया और जातिवाद के द्वारा संगठित भारतीय समाज रूपी शरीर को एक-एक करके टुकड़े-टुकड़े कर दिया, जैसे कोई बर्बर व्यक्ति शरीर के टुकड़े कर देता है। इसी प्रकार आर्यों/हिन्दुओं को बहिष्कृत करते रहे। अछूत, नीच मानकर उनको फिर सम्मिलित नहीं किया।

इन लोगों ने अधिकांश समाज पर शिक्षा प्राप्ति के स्वाभाविक अधिकार पर अंकुश लगाकर उसको अज्ञानी बना दिया और विश्वगुरु कहाने वाले इस देश को अज्ञानता के अन्धे कुएँ में धकेलने का पाप किया। निहितस्वार्थों ने इनकी बुद्धि पर ऐसा पर्दा डाला कि ये लोग देशहित में इतना भी विचार नहीं कर सके कि जिस देश का समाज अशिक्षित, अज्ञानी होगा तो वह ज्ञान-विज्ञान में अग्रणी कैसे हो सकता है? यदि अशिक्षा-अज्ञान उन्नति के आधार होते तो वनवासी आज सबसे उन्नत होते। इस प्रकार इन लोगों ने इस देश को इतना गिरा दिया कि इसको विश्वगुरु कहना तो छोड़िये, शिष्य बनने के योग्य भी नहीं छोड़ा। इससे भी अधिक शोक की बात यह है कि ये अपनी भूल को स्वीकार कर आज भी प्रायश्चित्त नहीं कर रहे हैं। यह भारतीय समाज के साथ बड़ा विश्वासघात कहा जायेगा कि सत्य का मार्गदर्शन कराने के जिम्मेदार रूढ़िवादी धर्माचार्यों ने उसी समाज को निरन्तर मार्गभ्रष्ट किया है।

स्वामी राघवाचार्य का विश्वासघात- एक कन्या को गायत्री मन्त्र से भाषण प्रारम्भ करने से कुपित होकर उसको मंच से उतार देने की शंकराचार्य की अन्यायपूर्ण घटना को लोग अभी भूले भी नहीं थे कि एक और कथित धर्माचार्य स्वामी राघवाचार्य इस वेद विरुद्ध मिथ्या सिद्धान्त को

लेकर प्रकट हो गये कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत संस्कार का और गायत्री मन्त्र के उच्चारण का अधिकार नहीं है। स्वामीजी जैसी बातें वीडियो में कर रहे हैं, उनसे ज्ञात हो रहा है कि उन्होंने संस्कृत व्याकरण और साहित्य भी पढ़ा है। किन्तु प्रतीत होता है कि उन्होंने वैदिक सिद्धान्त-विरुद्ध भाग तो पढ़ लिया और वैदिक सिद्धान्तानुकूल छोड़ दिया। इस कारण उनके मस्तिष्क के तार्किक पक्ष का विकास आज इस प्रौढ़ावस्था तक नहीं हुआ। पता नहीं कौनसे शास्त्र पढ़े हैं उन्होंने। आर्यों के तो सभी शास्त्रों में स्त्रियों के यज्ञोपवीत संस्कार तथा गायत्री आदि वेद मन्त्र पढ़ने का विधान है। एक भी शास्त्र ऐसा नहीं है जहाँ निषेध लिखा हो। वैसे तो अपने अधिकार का यह प्रश्न श्रोताओं में बैठी महिलाओं को उठाना चाहिये था। सैकड़ों में से एक ने भी नहीं उठाया। सभी 'सत्य वचन महाराज' की मुद्रा में बैठी रहीं। यह है आपके समाज-सुधार का उदाहरण! लेख में अधिक तर्क-प्रमाण नहीं दिये जा सकते। यदि आपका पक्ष सत्य है तो इन तर्क प्रमाणों का उत्तर दीजिये, नहीं तो आप वेदमत को स्वीकार कीजिये और भविष्य में मिथ्या सिद्धान्तों का कथन बन्द कीजिये। हमारे तर्क अग्रलिखित हैं...

१- वेदों के प्रमाण (क)- आर्यों (हिन्दुओं) के सर्वोच्च परमशास्त्र तो वेद हैं। इस तथ्य से कोई भी हिन्दू निषेध नहीं कर सकता। आज भी वेदों के सूक्तों पर मन्त्रार्थदर्शन करने वाली अपाला, घोषा, श्रद्धा, अदिति, लोपामुद्रा, सावित्री आदि २६ महिला ऋषिकाओं के नाम प्राप्त हैं। बृहद्देवता ग्रन्थ में उनकी सूची अंकित है (२/८२-८४)। क्या वे महिलाएँ बिना यज्ञोपवीत संस्कार किये वेदज्ञा होकर ऋषिका बन गयीं थीं? संस्कार होने पर ही वेद पढ़ने का अधिकार था, वेद पढ़ कर ही ऋषिका बनती थीं। वेदों के मन्त्रार्थों का अर्थ चिन्तन करने वाली महिलाओं को संस्कार एवं गायत्री मन्त्र का निषेध किस तर्क प्रमाण से माना जा सकता है, जबकि वेद आज भी स्वयं उसके प्रत्यक्ष प्रमाण है? वेदों के द्वारा स्वयं प्रदत्त इस विवरण के होते हुए किसी अन्य ग्रन्थ का वेद-विरुद्ध प्रमाण मान्य नहीं हो सकता।

(ख) अथर्ववेद ३/५/१८ में स्पष्ट लिखा है- **''ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्''**अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम धारण कर विदुषी होकर कन्या स्वयंवर विवाह कर सकती है। यह तो निश्चित है कि पहले उसका संस्कार होता था, फिर ब्रह्मचर्याश्रम धारण कर वेद-शास्त्रों को पढ़ती थी।

(ग) आप इसका बलात् कुछ भी अर्थ करें, यह मन्त्र स्त्रियों के सारे अधिकारों का साधक है- **''स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ''**= स्त्री वेद-विदुषी बनकर ब्रह्मा के सर्वोच्च ऋत्विज पद को पा सकती है (ऋग्वेद ८/३३/१९) स्त्री के लिए प्रयुक्त 'ब्रह्मा' विशेषण अपने आप में सभी शैक्षिक अधिकारों का साधक है।

(घ) वेदों और निरुक्त आदि वैदिक साहित्य में सरस्वती के अर्थ वेद-शास्त्रों की विशेषज्ञ विदुषी, ज्ञान-विज्ञानवती अध्यापिका, उपदेशिका स्त्री आदि अर्थ निर्विवादित हैं। एक मन्त्र में उसे स्पष्टत: यज्ञानुष्ठान करने वाली कहा है- **चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती**।। (यजुर्वेद २०/८४) अर्थात्-सुन्दर वाणी का उपदेश करने वाली और अच्छी बुद्धि की प्रेरणा देने वाली वेदज्ञा विदुषी यज्ञ का अनुष्ठान करती-कराती है।

(ङ) रूढ़िवादी पौराणिक भले ही इस मन्त्र का भी बलात् अनर्थ करें, किन्तु वेद के इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में स्त्री के लिए **'उपनीता'** विशेषण का प्रयोग किया है... **भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्।**

(ऋग्.१०/१०९/३)

अर्थात्- यज्ञोपवीत संस्कार की हुई ब्राह्मण वर्ण की पत्नी विद्या में अपराजेय हो जाती है। उसकी वाणी को उच्च आकाश भी कठिनता से धारण करता है, अर्थात् वाणी का घोष आकाश को गुँजा देता है। इसकी पुष्टि में आगे मनु की पत्नी का उदाहरण पढ़िये।

(च) वेद के इस मन्त्र में ब्राह्मण से लेकर सामान्य मानव-मात्र तक सभी वर्ण और वर्णेतरजनों को वेद-वाणी प्रदान करने का ईश्वरीय कथन है-

''यथेमां वाचं कल्याणीम् आवदानि जनेभ्य:।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय चारणाय च।''

(यजुर्वेद २६/२)

उपलक्षण के रूप में पढ़े इन शब्दों से वर्ण और वर्णेतर सारी स्त्रियों का ग्रहण स्वत: हो जाता है। यही शास्त्रीय विधान की शैली है।

(छ) इस मन्त्र का नाम गायत्री है और सावित्री है।

दोनों नाम स्त्रीलिंग हैं। इसकी देवता सविता भी स्त्रीलिंग है। जिसकी देवता ही स्त्री हो उस पर स्त्रियों का अधिकार न हो यह कैसे स्वीकार्य हो सकता है? अत: स्वामी जी का उक्त कथन तर्कहीन है।

२-स्मृतियों के प्रमाण

(ज) यम स्मृति के इस प्रसिद्ध वचन को स्वामीजी किस दुराग्रह के वशीभूत होकर उद्धृत नहीं कर रहे हैं

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा।।

(संस्कारप्रकाश पृष्ठ ४०२)

इसमें प्राचीनकाल में स्त्रियों के यज्ञोपवीत संस्कार, गायत्री मन्त्र वाचन और वेद अध्ययन तथा अध्यापन का स्पष्ट वर्णन है। आपने यह वर्णन नहीं पढ़ा तो इसका मतलब है कि आप लोगों का अध्ययन अपूर्ण है।

(झ) मनुस्मृति में द्विजों को सवर्णा से विवाह करने का निर्देश है

उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् (३/४)।

स्त्री सवर्णा द्विज तब बनती है जब वह उच्च तीन वर्णों का शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्तकर अर्थात् विद्या-जन्म प्राप्त कर द्विज होकर, स्नातिका बन कर गुरुकुल से बाहर आती है। उसके तो सारे अधिकार आपके जन्म से पहले ही स्वत:सिद्ध हैं। यह कौन से तर्क-प्रमाण से सिद्ध हो सकता है कि उसी की कोख से जन्म लेनेवाले आपको वह अधिकार मिल जाये और जन्मदात्री को न मिले। आप यदि उसको शूद्रवत् मान रहे हैं तो अपने मतानुसार यह भी मानिये कि शूद्र से द्विज उत्पन्न नहीं हो सकते। आप अपनी जन्मदात्री को इतनी अयोग्य, उपेक्षित और निम्न मान रहे हैं? परमात्मा ने उसको बुद्धि वेद-शास्त्र, विद्याध्ययन-अध्यापन के लिये दी है और असंख्य महिलाएँ बुद्धि में आपसे योग्य सिद्ध हो चुकी हैं। क्या बिगड़ जायेगा यदि वे वेद, गायत्री पढ़ लेंगी तो? आप ऐसे कह रहे हैं कि जैसे वेद पढ़ने से आपका कुछ लुट जायेगा! विदुषी माता बनकर दो कुलों को उन्नत ही करेंगी। आप जैसी अतार्किक और अचिन्तक सन्तानें तो नहीं होंगी।

हारीतस्मृति में भी ब्रह्मवादिनी विदुषियों का उल्लेख आता है। वहाँ उनका यज्ञोपवीत संस्कार करने का स्पष्ट आदेश है-"**ब्रह्मवादिनीनाम् उपनयनम्**"(२१/२३)। इन स्मृतियों को भी पढ़ लीजिये।

३- ब्राह्मणों, उपनिषदों के प्रमाण

(ञ) शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्मविद्या की विदुषी गार्गी का वृत्तान्त वर्णित है। उसने ब्रह्मविद्या के विषय पर ऋषि याज्ञवल्क्य से संवाद किया था (३/६/२)। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी (२/४/२)। मनु वैवस्वत की पत्नी का वर्णन आता है कि वह उच्च स्वर से यजुर्वेद के मन्त्रों का गायन करती थी-"**तत्पत्नीं यजुर्वदन्तीम्**" (काठक ब्रा. ३/३०/१)। क्या ये सब बिना यज्ञोपवीत संस्कार के वेद पढ़ती थीं?

४- संस्कृत साहित्य के प्रमाण

(ट) रामायण को आप अठारह पुराणों से ऊपर कह रहे हैं। किन्तु देवी कौशल्या द्वारा किये स्वस्तिवाचन और देवी सीता आदि द्वारा किये गये संध्या-यज्ञ के वर्णनों को आप श्रोताओं को नहीं बताते हैं (अयोध्या २०/१५,२५/४६) आपको पता है बिना गायत्री के संध्या-यज्ञ नहीं होते। मनुस्मृति में प्रात:-सायंकालीन संध्याओं में द्विज स्त्री-पुरुषों को गायत्री मन्त्र के जप करने का आदेश दिया है (२/१०१)। महाभारत में देवी सुलभा, शिवा, सिद्धा आदि ब्रह्मविद्या विदुषियों के इतिहास हैं (शान्ति. ३२०/८२, उद्योग. १०९/१८ आदि)। उनक आप अपने श्रोताओं में चर्चा भी नहीं करते। तो यह आपका पक्षपातपूर्ण दुराग्रह है, अथवा अध्ययन की अपूर्णता? ये बातें आपके अध्ययन पर प्रश्न खड़ा करती हैं।

५-संस्कृत व्याकरण के प्रमाण

(ठ) आपने अपने प्रवचन में संस्कृत व्याकरण के प्रमाण भी दिये हैं। आचार्य पाणिनि ने स्त्रियों की 'उपाध्याया', 'आचार्या', 'कठी', 'बह्वृचि' आदि वेद-शाखाओं की विदुषियों का उल्लेख किया है (४/१/४९,६३)। इन सब वैदिक विदुषियों का संस्कार भी हुआ था और वेदों का अध्ययन भी। आपने या तो इन उदाहरणों को पूर्वाग्रह के कारण श्रोताओं से छिपा लिया, या आपका व्याकरण का अध्ययन भी अधूरा है।

६- समाज-हितकारी तर्क

(ड) समझ में नहीं आ रहा कि आप कौनसे शास्त्रों को शास्त्र मानते हो, और कौनसे शास्त्र आपने पढ़े हैं? उक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि वेद और किसी भी वैदिक शास्त्र में ये नहीं लिखा है कि स्त्रियों का यज्ञोपवीत और वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। आपने अपने घर के ही

ग्रन्थों को शास्त्र बना लिया, या उनके आधार पर भोले-भाले श्रोताओं को गुमराह कर रहे हैं।

(ढ) आपने वेदविरुद्ध, तर्कविरुद्ध और मानवता विरुद्ध बातें कहकर लोगों को गुमराह करने का अनर्थ किया है। भारतीय वैदिक संस्कृति-सभ्यता का पतन किया है। वेद का अहित किया है। वेद ने तो आदेश दिया है... **''कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्''**। आपने अपने परिवार के सदस्यों को ही आर्य नहीं बनने दिया? आपने वेदविहित विधि का स्वयं उल्लंघन किया है और आप श्रोताओं को विधि का उल्लंघन न करने का उपदेश दे रहे हैं!!

(ण) वेद भाष्यकार महर्षि दयानन्द जी के इस तर्क का उत्तर आज तक कोई रूढ़िवादी नहीं दे सका है कि परमात्मा ने अन्न, वायु, जल आदि की तरह वेद भी मानवमात्र के लिए दिये हैं। मननशील को मानव कहते हैं। स्त्रियां भी मानव हैं। परमात्मा ने उनको बुद्धि, कान, आँख आदि इन्द्रियाँ विद्या प्राप्त करने, सुनने और पढ़ने के लिए दी हैं। अत: ईश्वर की विद्या वेद को पढ़ने का स्वाभाविक अधिकार मानव मात्र को है। यदि हम सबको वेद नहीं पढ़ायेंगे तो विश्व आर्य कैसे बनेगा?

आप लोग तो ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं, अत: आप सच्चे ईश्वर-भक्त नहीं हैं।

(त) अच्छे आचरणों, कर्त्तव्यों को धारण करने-कराने का तथा अपने जीवन, देश और समाज का अभ्युदय एवं नि:श्रेयस् करने-कराने का नाम धर्म है। आप लोगों ने आज तक देश या समाज का क्या अभ्युदय किया है? देश और समाज तो पतन और विनाश की ओर गये हैं। हाँ,अपना निजी अभ्युदय अवश्य किया है। नि:श्रेयस् तो आपका होगा नहीं, क्योंकि प्रचार आप मिथ्या धर्म का कर रहे हैं।

(थ) रूढ़िवादी लोगों की बुद्धि की संकीर्णता तो देखिये कि दुनिया के सभी मत वाले अपने मतग्रन्थों का अनेक भाषाओं में अनुवाद करके और उनको लाखों की संख्या में छपवा कर विश्व में नि:शुल्क बाँटकर प्रचार कर रहे हैं और आप अपने धर्मग्रन्थों को आज तक छिपाने में ही लगे हैं। परमात्मा ने वेद अपने मानव पुत्र-पुत्रियों के पढ़ने के लिए ही प्रकट किये थे। आप जैसों की ताला बन्दी के लिए नहीं बनाये हैं। आपने वेदों को छिपा-छिपा कर, वेदविरुद्ध बातों के प्रचार से हिन्दू समुदाय को मूर्ख बनाकर, हिन्दू धर्म को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। वह ईरान, इराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल से नष्ट होते-होते थोड़ा-बहुत भारत में बचा है। उसे भी रूढ़िवादी फरमानों से आप नष्ट करने में लगे हैं।

रुढ़िवादी लोगों ने ऐसे प्रतिबन्ध-पर-प्रतिबन्ध लगाये कि समाज को जकड़ाते और पिछड़ाते चले गये। देश, धर्म, संस्कृति-सभ्यता की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले धर्मयोद्धा छत्रपति शिवाजी जी के राजा बनने में आप लोगों ने बाधा डाली, जो आप लोगों की रक्षा के लिए ही लड़ रहे थे। ऐसे संघर्ष के समय भी आपने उनको क्षत्रिय होने का सबूत देने को कहा। उनके चौदह करोड़ खर्च कराके राजा बनाया। ये राशि जो आप लोगों ने खसोटी यह देश-धर्म की रक्षा में काम आती। क्या आपने कभी अकबर, औरंगजेब, अंग्रेज से क्षत्रिय होने का प्रमाण-पत्र माँगा, जो एक हजार वर्षों तक उनकी गुलामी ढोते रहे। अगर मन्त्रों का बुरा प्रभाव हो जाता है, तो सोमनाथ मन्दिर में गजनी के विनाश के लिए पढ़े गये मन्त्रों और देवपूजा से उसका विनाश क्यों नहीं हुआ। उलटा तर्कहीन पण्डितों का हो गया। उसने उनको मारा और मल-मूत्र उठवाया। वही बात अब दोहरायी जा रही है। इतिहास से भी कुछ सीखो।

७-पुरातात्विक प्रमाणों से पुष्टि

(द) आजकल किसी देश, समाज के इतिहास, संस्कृति-सभ्यता के चित्रण में पुरातात्विक प्रमाणों को सर्वोपरि प्रमाण माना जाता है। महिलाओं की प्राचीन मूर्तियों में उन्हें यज्ञोपवीत धारण किये हुए दिखाया गया है। वे वैदिक सिद्धान्तों की प्रबल पुष्टि करती हैं। अत: आपका उक्त कथन पुरातात्विक इतिहास के विरुद्ध होने से भी मिथ्या है।

धर्माचार्यों, समाजसेवियों का कार्य जनता का हित करना, उनका उत्थान करना, उत्तम मार्गदर्शन करना होता है। आप लोग तो शताब्दियों से उनके अधिकारों का हनन, विघटन, भेदभाव और देश का पतन करने में लगे हैं। क्या आप कभी एकान्त में बैठकर अपने किये पर, तथा धर्म और देश के किये गये पतन की हालत पर चिन्ता नहीं करते?? शास्त्रों में कहा है कि प्रत्येक मनुष्य की आत्मा सत्य-असत्य को जानने वाली होती है, आप एक बार आत्मचिन्तन कीजिए कि रूढ़िवादी बातें बता कर आपने देश, धर्म, मनुष्य समाज का क्या भला किया है? आत्मा आपको आइना दिखा देगी। **डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

प्रवचनमाला-६५

मृत्यु सूक्त-५१

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।।

इस वेद ज्ञान की चर्चा में हम ऋग्वेद के मन्त्रों पर विचार कर रहे हैं और ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त के ८ वें मन्त्र पर हमारा विचार है। इस मन्त्र में हमने एक व्यक्ति के, एक पति के, पुरुष के मर जाने के बाद महिला की क्या परिस्थिति है, उसका प्रयोजन, उद्देश्य, लक्ष्य, कर्त्तव्य क्या है, यह इस मन्त्र में देखा।

जिसका पति नहीं रहता, ऐसी नारी के लिए हम एक शब्द का प्रयोग करते हैं, **'विधवा'**। **धव** पति को कहते हैं। **वि=गत**, **धव=पति**, अर्थात् जिसका पति चला गया वह विधवा कहलाती है। तो मन्त्र कहता है हे नारी! जो चला गया, जिसके अन्दर प्राण नहीं बचे, उसको छोड़ो, तुम्हारी संगति प्राण से है, प्राणवान से है, जीवात्मा से है और जिस शरीर में जीवात्मा ही नहीं बचा, उससे सम्बन्ध भी शेष नहीं रहता। शरीर से सम्बन्ध के लिए आप इस संसार में नहीं आये थे। शरीर के माध्यम से आप आत्मा से आत्मा का सम्बन्ध बनाते थे। हमारा कोई सम्बन्धी केवल शरीर से नहीं हो सकता, जब तक उस शरीर में आत्मा न हो। इस शरीर के माध्यम से आत्मा हमारा माता-पिता, सम्बन्धी आदि बनता है। तो यह मन्त्र कहता है- **गता सुमेतमुप शेष एहि**, जिसको तुमने पति समझा था, स्वामी समझा था, घर का बड़ा समझा था वह **गतासुम** हो गया है, उसके प्राण चले गये हैं। **उपशेष एहि**, उसको छोड़ कर आ जाओ, छोड़कर चलो। कहाँ चलो? **उदीर्ष्व**, उठ खड़े हो जाओ और **अभि जीवलोकम् एहि**, जहाँ जीवन है वहाँ चलो, जहाँ प्रवाह है, गति है वहाँ चलो, जहाँ कर्त्तव्य है वहाँ चलो। यहाँ किसके लिए करोगे, कोई है ही नहीं। कोई देने वाला नहीं, तो कोई लेने वाला नहीं, कोई प्राप्ति वाला नहीं, कोई बोलने वाला नहीं, यहाँ रहकर करोगे क्या? तो **जीवलोकमभि एहि** तुम जीव लोक को आओ।

मन्त्र के अगले भाग में दो विशेष बातों की ओर ध्यान दिलाया गया है-

(१) हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदम्

(२) पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।

सामान्य रूप से इस संसार में सम्पत्ति को लेकर झगड़ा होता है और उसके लिए नियम बनाने पड़े हैं। नियम इसलिए बनाने पड़े कि यह सारे संसार की सम्पत्ति है प्राणियों के लिये, प्राणियों में भी मनुष्य के लिये। अब मनुष्य के साथ विचित्रता क्या है कि इसकी आवश्यकता की पूर्ति तो थोड़े में हो जाती है, लेकिन इसकी इच्छा बहुत बड़ी होती है, यह इच्छा पूरी ही नहीं हो सकती। भगवान् ने संसार इतना तो बनाया है कि इसमें हर प्राणी की आवश्यकता की पूर्ति हो जायेगी, क्योंकि कोई आदमी यह नहीं कर सकता कि बुलाये १०० आदमियों को और व्यवस्था १० की करे। मनुष्य अल्पज्ञ है, अल्प सामर्थ्य है, लेकिन जानकारी होने पर, पता होने पर कि कितने लोग आने हैं, कितने बुलाये हैं तो हम अपेक्षाकृत व्यवस्था उससे अधिक की करते हैं कम की नहीं। परमेश्वर का स्वभाव भी ऐसा है। मनुष्य को जो कुछ दे रखा है, जितने से इसका काम चल सकता है, इसके पास उससे हजारों गुना अधिक है। एक शरीर के रूप में जो इस मनुष्य को मिला है, जीवात्मा को मिला है, आप उसकी यदि कल्पना भी करेंगे तो पता लगेगा कि एक सामान्य से जीवात्मा के लिए कितना बड़ा तन्त्र परमेश्वर ने विकसित किया है। इसको यदि मस्तिष्क के उदाहरण से लें तो शरीर-रचना को समझने वाले लोगों के द्वारा यह कहा जाता है कि एक बहुत बुद्धिमान् व्यक्ति पूरे

जीवन में जितने मस्तिष्क का उपयोग कर सकता है, परमेश्वर ने उससे हजारों गुना अधिक मस्तिष्क देकर इस संसार में मनुष्य को भेजा है। तो उसका जो सामर्थ्य है, वह उसकी आवश्यकता से बहुत अधिक है। यह सामर्थ्य मनुष्य के नाते हमको मिला हुआ है। सोचने की बात है कि जब ईश्वर संसार में मनुष्यों को प्राणियों को बनायेगा तो क्या उनके लिए उपयोगी-सामग्री का कहीं अभाव हो सकता है? अभाव है तो हमारे ज्ञान की कमी से, हमारे व्यवहार की कमी से, हमारे द्वारा नियम पालन न करने से, प्रकृति के साथ दुर्व्यवहार करने के कारण से ऐसे कारण हो सकते हैं। लेकिन परमेश्वर ने हमें जो साधन बनाकर दिये हैं, वे बहुत हैं, इतनी बड़ी संख्या में हैं, इतने विशाल रूप में हैं, इतनी मात्रा में हैं कि सबके लिये भी वे साधन कम नहीं पड़ सकते।

तो कम कहाँ पड़ते हैं? जब हम इच्छा करने लगते हैं, आवश्यकता की बात नहीं करते हैं। जब हम बहुत चाहने लगते हैं तो दूसरे को नहीं मिलता है और कोई एक व्यक्ति उसका संग्रह करने लगता है, ऐसी स्थिति में संघर्ष पैदा होता है, लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं, स्वार्थ के कारण से एक-दूसरे पर आक्रमण करते हैं, वैर-भाव रखते हैं, छीनने की कोशिश करते हैं। यहाँ पर एक नियम बनाया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी तरह से, जो उसकी आवश्यकतायें है वे पूर्ण हों, जो उसकी योग्यता है उसके अनुसार उसे प्राप्ति हो। इसलिये हमने सम्पत्ति के विभाजन का नियम बनाया और नियम यह बनाया कि जिसके पास जो सम्पत्ति है, वह सम्पत्ति सहज रूप से उसकी सन्तानों को प्राप्त होती है। यह नियम मनुष्य का बनाया हुआ है। जो नियम परमेश्वर के बनाये हुये हैं, उनमें कहीं त्रुटि नहीं है, उनमें कोई न्यूनता नहीं है, उनके पालन करने में कठिनाई भी नहीं है, क्योंकि परमेश्वर ने जो नियम बनाये हैं, वे पूर्ण हैं। क्योंकि, परमेश्वर अपने बनाये नियमों को स्वयं क्रियान्वित करता है, लागू करता है, इसलिए हम उनको तोड़ने का साहस नहीं कर सकते। हमारा जन्म कब होगा, हमारी मृत्यु कब होगी, यह हमारे हाथ में नहीं है, यह उसकी व्यवस्था में चलता है। लेकिन जो नियम मनुष्य बनाता है, क्योंकि बनानेवाला मनुष्य है तो वह इसको बदल भी सकता है, तोड़ भी सकता है, समाप्त भी कर सकता है, क्योंकि जिसने बनाया है, उसमें तोड़ने का सामर्थ्य रहता है, उसको बढ़ाने का, विकसित करने का ज्ञान-विज्ञान योग्यता उसके पास रहती है। इसलिए परमेश्वर जिन नियमों को बनाता है, वो कभी टूटते नहीं है, कभी खंडित नहीं होते, उनको कोई विकसित या कम नहीं कर सकता है। लेकिन जो नियम मनुष्य के बनाये हुए हैं वो मनुष्य के द्वारा खंडित किए जा सकते हैं, विकसित किए जा सकते हैं, समाप्त भी किए जा सकते हैं।

मन्त्र में कहा- यह तेरा जो पति चला गया, वह पूरा नहीं चला गया। उसके साथ जो कुछ था वह अभी बचा हुआ है। वह उसकी सन्तान के रूप में है, उसकी सम्पत्ति के रूप में है, उसके साधनों के रूप में है, इसलिए नारी को कहा गया कि तुम यह मत सोचो कि तुम्हारा सब कुछ चला गया है। संसार में बहुत शेष है, जो उसका था और उसके कारण से तुम्हारा था। इसलिए कहा **हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं** उसने तुम्हारा हाथ पकड़ा था। हमारा जो विवाह संस्कार है, इसको विवाह क्यों कहते हैं- वहन करने का सामर्थ्य इसमें प्रकट हो रहा है। बताया गया है कि हम इस उत्तरदायित्व को वहन करने का संकल्प लेते हैं। वहन करने का सामर्थ्य रखते हैं। इसलिए इस संस्कार को हम विवाह कहते हैं। लेकिन इस संस्कार का एक नाम है **पाणिग्रहण संस्कार पाणि** संस्कृत में हाथ को कहते हैं, **ग्रहण** पकड़ने को कहते हैं। अर्थात् जिस संस्कार में वर-वधू परस्पर हाथ पकड़कर कोई संकल्प लेते हैं, प्रतिज्ञा करते हैं, मन्त्र पढ़ते हैं, इसलिए उन मन्त्रों को हम पाणिग्रहण के मन्त्र कहते हैं और उस क्रिया को जिस संस्कार में करते हैं, इसलिए उसका नाम पाणिग्रहण संस्कार लिखा है।

पाणिग्रहण हमारे यहाँ बड़ी स्वाभाविक चीज है। हमको लगता है कि पाणिग्रहण बाहर की (शरीर की) चीज है, कोई किसी का भी हाथ पकड़ सकता है। लेकिन हाथ पकड़ने का जो प्रयोजन है, हाथ पकड़ने की जो परिस्थिति है वह कब आती है, कब हो सकती है? वह जब हम किसी का साथ लेते हैं, किसी के साथ अपने को जोड़ लेते हैं तो हमारे पास जुड़ने का और कोई तरीका ही नहीं है, हम पैर से नहीं पकड़ते, हम कोई दाँतों से नहीं पकड़ते। बिल्ली अपने बच्चे को ले जाती है तो मुँह में दबाकर ले जाती है, गाय अपने बच्चे की सेवा करती है तो अपने मुँह से करती है। लेकिन मनुष्य के साथ तो ऐसा नहीं है। मनुष्य के पास अतिरिक्त चीज है। मनुष्य के पास अतिरिक्त दो चीजें हैं, जो और प्राणियों के पास नही हैं। मनुष्य के पास एक वाणी है, जो स्पष्ट अभिव्यक्ति

है, उसके पास भाषा है, सारे काम अपने वह भाषा से सिद्ध करता है, वह लिखता भाषा में है, वह बोलता भाषा में है, वह विचार भाषा में करता है, संवाद-सम्प्रेषण भाषा में करता है। इस दृष्टि से एक तरफ तो उसके पास वाणी है और दूसरे किसी प्राणी से मनुष्य किस अर्थ में श्रेष्ठ है?

श्रेष्ठता के लिए एक शब्द आता है, सम्पन्नता अर्थात् कुछ चीजें जिसके पास हैं वह उनसे युक्त होता है, तो हम उसको सम्पन्न कहते हैं। कौन कैसे सम्पन्न होता है, तो कहते हैं कि साधन सम्पन्न है अर्थात् इसके पास पर्याप्त साधन हैं। हमारी जो इन्द्रियाँ है, ये हमारे साधन हैं। संसार में जितने भी प्राणी हैं, उन सबकी इन्द्रियाँ उनके साधन हैं और उसमें अद्भुत बात क्या है कि पशु-पक्षी व मनुष्यों की इन्द्रियाँ समान नहीं हैं। किसी के पास कुछ इन्द्रियाँ कम हैं, किसी के पास कुछ इन्द्रियाँ अधिक हैं। कोई एक इन्द्रीय प्राणी है, कोई दो, कोई तीन, कोई चार इन्द्रियों वाला प्राणी है और पाँच इन्द्रियों वाला है कोई। मनुष्य में १० इन्द्रियाँ और मन के साथ ११ गिनाई गई हैं। ५ कर्मेन्द्रियाँ जिनसे हम कोई काम करते हैं, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ जिनसे हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन्द्रियाँ हमारे साधन हैं और ये साधन जितने अंश में जिसके पास हैं, वह उतना सम्पन्न है जैसे हम कहते हैं कि साइकिल वाले से कारवाला सम्पन्न है। जिसके पास वायुयान है वह उससे बड़ा है। एक कार की बजाए १० कार हैं, एक घर की बजाए अनेक घर हैं उसे हम अधिक सम्पन्न मानते हैं। किसी के पास १०० रुपये तो किसी के लाख रुपये हैं तो हम उसे सम्पन्न मानते हैं। तो जो व्यक्ति साधनों से जितना युक्त होता है हम उसे उतना सम्पन्न कहते हैं। हमारी सम्पन्नता हमारी इन्द्रियों के द्वारा होती है और मनुष्य के पास २ इन्द्रियाँ विशेष हैं-वाणी है अभिव्यक्ति और एक उसका कर्म उसका हाथ है। जो कुछ करना है हाथ से कर सकता है जो कुछ कहना है वाणी से कह सकता है। उसे शरीर के दूसरे अंगों को बहुत कष्ट देने की उतनी आवश्यकता नहीं है।

यहाँ पर मन्त्र में जो शब्द का प्रयोग किया गया है, **हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं** कि जिस व्यक्ति के लिए तुम यहाँ आयी हो, तुम यहाँ से वापस चलो, क्योंकि जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा था उसका अभी बहुत कुछ शेष है। वह वस्तु- साधनों के रूप में शेष है या सन्तान के रूप में शेष है। तुम उसको साधनों के रूप में भी प्राप्त कर सकती हो और सन्तान के रूप में भी प्राप्त कर सकती हो।

ऋषि दयानन्द ने विशेष रूप से इस मन्त्र के बारे में आगे के जीवन के लिए जो-जो उपाय हो सकते हैं, उनकी विशेष रूप से चर्चा की है। मन्त्र कहता है- **पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ** जो तुम्हारे पति के द्वारा उत्पन्न किया हुआ है, या तुम पति के लिये जो उत्पन्न करना चाहती हो, अर्थात् उसके लिए तुम कौन सी विधि कौन-सा उपाय अपनाती हो, उसका तुम्हें अधिकार है अर्थात् तुम किसी सन्तान को गोद ले सकती हो, किसी सन्तान को किसी के द्वारा प्राप्त कर सकती हो, तुम दूसरा विवाह कर सकती हो। तो ये जो परिस्थितियाँ हैं, ये परिस्थितियाँ जीवन के लिये हैं, जीवन को आगे बनाने, बढ़ाने के लिये हैं। यह सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि आप किस परिस्थिति में खड़े हैं, किस आयु में खड़े हैं, आप किस व्यवस्था में खड़े हैं, आपकी किन आवश्यकताओं के बीच में आप खड़े हैं तो सबके साथ एक नियम काम नहीं करता, एक तरह से सब व्यवहार नहीं करते। किसी का यदि सम्पूर्ण परिवार ठीक है, उसके पास सन्तान भी है, सम्पत्ति भी है तो वह केवल उसे सम्भालने की इच्छा रखती है, उसको मार्गदर्शन देने की इच्छा रखती है, उसको अपने निर्देशन में अपने पति के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के लिए काम करना है तो **पत्युर्जनित्वमभि 1 संबभूथ** अर्थात् जो तुम्हारे पति का उत्पन्न किया हुआ है, पति के लिए उत्पन्न किया हुआ है, वो जो साधन हैं, वो जो व्यक्ति हैं तुम्हें उनको धारण करना है, उनको बढ़ाना है, तुमको उसकी रक्षा करनी है। इसलिये यदि वो नहीं भी हैं तो वो सम्पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो गया है। तुम्हारा अस्तित्व, उसके रूप में वह विद्यमान है। तुम्हें उसकी सुरक्षा के लिये करना है। तुम अपने अस्तित्व का उपयोग न करो और उसको असुरक्षित छोड़ दो, यह वेद के विरुद्ध बात है। वेद कहता है-**उदीर्ष्व नारी**- हे पत्नी, हे नारी! तुम उठ खड़ी हो जाओ। **गतासुमेतमुप शेष एहि**- गये हुए को त्याग दो और इसको छोड़कर तुम जीवन की ओर जाओ। **हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं**- जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा था, जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हारे साथ चलने का संकल्प लिया था, प्रतिज्ञा की थी। **पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ**- अपने उस पति के द्वारा उत्पन्न, पति के लिए उत्पन्न जो सन्तान है, जो साधन हैं, उनको तुम सम्भालो और अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करो।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आर्यसमाज के विरोधी इसे ध्यान से पढ़ें- एक समय ऐसा भी आया जब आर्यसमाज को कुचलने के लिये गोराशाही पूरे दल-बल से तुल गई। तब भारत के वायसराय की ओर से इंग्लैण्ड में यह गुप्त सूचना दी गई ''A revolt in India feared.'' अर्थात् भारत में विद्रोह की आशङ्का या भय है। इसी पत्र में यह भी लिखा गया था कि आर्यसमाज उन्नत हो रहा है, फैल रहा है। यह गुप्त पत्र श्री राहुल आर्यजी अकोला ने खोज निकाला। हमने इसका छायाचित्र कई ग्रन्थों में दिया है। आर्यसमाज के दमन-दलन की सरकार की नीति का लाभ उठाने के लिये आर्यसमाज के सब विरोधी इकट्ठे हो गये। लाला लाजपतराय ने अपनी एक लुप्त हो चुकी पुस्तक में लिखा है [यह पुस्तक हमने खोज कर सुरक्षित कर ली है] कि आर्यसमाज के सब विरोधी मिलकर भी आर्यसमाज का कुछ न बिगाड़ सके। तब सनातनधर्मी हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, नास्तिक देवसमाजी, मिर्ज़ाई, ऐंग्लो इण्डियन सब आर्यसमाज के विरोध में सरकार के साथ हो लिये।

हरियाणा में आजकल साम्यवादी कम्युनिस्टों, हैदराबादी कासिम रिज़वी की मजलिस के वर्तमान मुखिया ओवैसी, रामपाल आदि सबके आशीर्वाद प्राप्त करके कुछ तत्त्व आर्यसमाज के विरुद्ध विषवमन करने में लगे हैं। इनको पैसा देनेवालों की भी कोई कमी नहीं है। इनके लिखनेवाले पर्दे के पीछे रहकर इन्हें लेखन सामग्री देते हैं। हमारी इस आशङ्का का निवारण ये नहीं कर सकते। ये तत्त्व अनाप-शनाप कुछ भी लिखते रहते हैं। इन दिनों एक घिसापिटा वार आर्यसमाज पर किया गया है। इनके लिये यह नया होगा। हम इनके कथन का प्रतिवाद क्या करें? सब बड़े-बड़े नेता, इतिहासकार तथा क्रान्तिकारी इनके अर्नगल प्रलाप का, इनके विषवमन का अपने एक नहीं सैकड़ों लेखों तथा ग्रन्थों में पहले ही निराकरण कर चुके हैं। आर्यसमाज को अंग्रेजभक्त बताने-दिखाने का निरर्थक प्रयास किया जा रहा है। आश्चर्य का विषय तो यह है कि भारत में रक्तपात की धमकियाँ देने और भारत के विरुद्ध युद्ध की घोषणायें करनेवाले कासिम रिज़वी का यह मानस चेला हरियाणा से यह वार किये जा रहा है।

१. भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में सेना में विद्रोह फैलाने के समय-समय पर कई देशभक्तों पर दोष लगाये गये और अभियोग भी चलाये गये। ये लोग प्रायः करके आर्यसमाजी थे। ऐसा सबसे भयङ्कर केस पूजनीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज पर चलाया। यह केस ऐसा भयङ्कर था कि सरकार ने इस बात का भी धुआँ न निकलने दिया कि महाराज को कहाँ किस कारागार में ले जाया गया। पत्रकार जगत् के एक शिरोमणि श्री महाशय कृष्ण तथा उस समय के एक दक्ष प्रभावशाली, दृढ़ नेता चौधरी छोटूराम जी को भी इसकी भनक न पड़ने दी।

चौधरी छोटूराम का सरकार में प्रभाव था। दबदबा था। बड़े यत्न से आपने पता निकाल लिया कि उनके गुरुदेव को लाहौर के शाही किला में रखा गया है। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में पहले साधु स्वामी स्वतन्त्रानन्द ही थे जिन पर ऐसा भयङ्कर केस चलाया गया। क्या ऐसे स्वाधीनता सेनानी के आर्यसमाज पर ऐसा मिथ्या दोष लगानेवाले को अपने कुकृत्य पर कुछ लज्जा आयेगी? ऐसे तो प्रश्न ही नहीं।

२. भारत के स्वराज्य संग्राम में एक ही वैज्ञानिक को कारागार में ठूँसा गया और वह भी बम बनाने के दोष में। यह थे आर्यसमाज के वैज्ञानिक विद्वान् डॉ. सत्यप्रकाश जी, जो स्वामी सत्यप्रकाश के नाम से सारे संसार में और भी विख्यात हुये। जिस आर्यसमाज का ऐसा रिकॉर्ड है, ओवैसी का भक्त, उससे प्रमाण-पत्र पाने का अभिलाषी उस पर दोष लगाने का दुःसाहस करता है।

३. भारतीय स्वराज्य-संग्राम में काँग्रेस का एक ही प्रधान है जिसने वीरगति पाई और वह है लाला लाजपतराय, आर्यसमाज का नेता। रामपाल की छत्रछाया में लीडरी करने वाले इस कामरेड को इतिहास का मुँह चिढ़ाते हुये लज्जा ही नहीं आती। जो जी में आता लिख देता है। बोल देता है।

४. इसे पता होना चाहिये कि हमारे देश में स्वराज्य संग्राम के इतिहास में दो नेताओं को सर्वप्रथम देश से निष्कासित किया गया। ये दोनों ही आर्यसमाज के तप:पूत थे। लाला लाजपतराय को सबसे पहले माण्डले निष्कासित किया गया, फिर थोड़े समय बाद क्रान्तिवीर अजीतसिंह जी को। दोनों परस्पर मिल नहीं सकते थे।

५. यह भी नोट कर लीजिये कि **लाला लाजपतराय पर सेना में विद्रोह फैलाने का भी दोष थोपा गया था।**

६. महोदय स्वराज्य संग्राम में **पहला सत्याग्रही जिसने** न्यायालय का अपमान (contempt of court) करके अपनी सम्पत्ति ज़ब्त करवाई, जेल में ठूँसा गया वह हरियाणा में जन्मा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का एक चेला पं. मनसाराम वैदिक तोप था। आर्यसमाज की शान को कामरेड क्या जानें?

७. जिसने स्वाधीनता सैनिकों पर सीमा प्रान्त में गोली चलाने से इनकार करके लम्बी यातनायें भोगीं। वह चन्द्रसिंह गढ़वाली सैनिक आर्यसमाजी ही था।

८. विदेशों में गोराशाही को चुनौती देकर फाँसी पानेवाला पहला क्रान्तिकारी मदनलाल ढींगड़ा आर्यसमाजी था।

९. स्वराज्य-संग्राम में जन-जागरण के दोषी जिस इकलौते नेता का दक्षिण भारत में जेल में बलिदान हुआ वह आर्यनेता भाई श्यामलाल था। इस देशभक्त से निजामशाही सदा भयभीत रही।

१०. दक्षिण भारत में एक ही नेता को जन-जागरण के लिये, देशहित कार्य करने के लिए सामान्तशाही ने अपने कालेपानी मन्नानूर के जंगलों में पिंजरे में बन्दी बनाकर रखा। वह आर्यसमाज का नेता पं. नरेन्द्र था, कोई और नहीं था। इसी नरेन्द्र क्रान्तिवीर से भय के कारण आपके पूजनीय ओवैसी के दल के नेताओं की मण्डली में हड़कम्प मचा रहता था।

११. हम भाई परमानन्द जी और क्रान्तिकारियों के गुरु श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा के इतिहास में अद्वितीय स्थान की चर्चा नहीं करेंगे। कामरेड! आप ओवैसी से उनके बारे में सब जानकारी ले सकते हैं।

१२. देश के नेताओं में स्वराज्य-संग्राम में राष्ट्रीय स्तर के जिस नेता को लोहे का तंग पिंजरा बनवाकर उसमें बन्दी बनाया गया वह शूरता की शान श्रद्धानन्द स्वामी नामी संन्यासी था। किसी कामरेड को ऐसा गौरव प्राप्त न हो सका।

१३. जलियाँवाला बाग रक्तिम काण्ड के हीरो डॉ. सत्यपाल जी तथा उनके वृद्ध पिता जी को एक-दूसरे से दूर एक ही जेल में तपते लोहे के पिंजरों में कारागार में रखा गया। वे विख्यात आर्यसमाजी थे। यह कौन नहीं जानता? आर्यसमाज के बलिदानों और देशभक्ति पर प्रश्न उठाने वालो! आप के कुटुम्ब, कबीला अथवा आपके ढोंगी बाबों में से किसको जनहित में ऐसी यातनायें सहनी पड़ीं?

१४. सन् १८५७ की क्रान्ति के पश्चात् मिस्टर जानते हो कि राजद्रोह का पहला अभियोग पटियाला स्टेट के आर्यों पर चलाया गया। उनमें ८४ आर्यसमाजियों को यातना शिविर में रखकर दबाया, सताया और डराया-धमकाया गया। उनमें से एक भी न डोला और न बोला। सब अडिग रहे। सरकारी वकील जो गोरा था, उस ग्रे नाम के गोरे वकील को भी इस बात पर अचम्भा था कि **इनमें से किसी ने भी अपना कोई दोष स्वीकार नहीं किया।**

१५. इस राजद्रोह के केस में आर्यसमाज पटियाला के सेवक वीर खण्डू सैनी का शौर्य तो हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम में अपने आप में एक इतिहास है। वह दो बार बन्दी बनाया गया। देश के किसी बड़े से बड़े आन्दोलन में क्या कहीं पर किसी पार्टी-किसी दल के सेवक ने ऐसी शूरता का परिचय दिया? उसे डराने-धमकाने में कोई कमी न छोड़ी गई। उसे भूखा मारा गया। उसे अकेले भी रखा गया फिर भी उसने आर्यसमाज से द्रोह करना स्वीकार नहीं किया। इस शूरवीर की जीवनी प्रेस में है।

१६. देश के स्वराज्य-संग्राम में एक संन्यासी, महात्मा, धर्मगुरु पर किसी अंग्रेज गवर्नर की हत्या का षड्यन्त्र रचने का महाभियोग चलाया गया। वे थे हमारे गुरुवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज। हरियाणा के ग्राम-ग्राम में जाखल से लेकर रेवाड़ी, और गुड़गाँव तक ग्रामीण जनता-क्या ब्राह्मण, क्या बनिये, यादव, गुर्जर, रोड़, कुम्हार, चमार, लोहार, खाती और सैनी जिनकी चरणधूलि माथे पर लगाकर स्वयं को धन्य-धन्य मानते थे। इस इतिहास पर हमें

अभिमान है।

१७. कामरेड! हमें पता चला है कि तुम्हारे मन में जाटों के नाम पर अपनी लीडरी की रोटियाँ सेंकने का खूब उन्माद है। क्या तुम्हें पता नहीं कि हमारे पूजनीय गुरु व नेता स्वामी स्वतन्त्रानन्द एक प्रतिष्ठित जाट कुल में जन्मे थे। गत कई शताब्दियों में जाट परिवार में जन्मा यही एक संन्यासी महात्मा हुआ है जिसको देश भर में प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक बिरादरी के बड़े-छोटे सब लोग झुक-झुकर नमन किया करते थे। हरिद्वार के कुम्भ मेला में उनको देखकर एक मण्डलेश्वर यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ, ''स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आ रहे हैं''। उनके उठते ही साधुओं की सारी भीड़ उनके स्वागत को उठ खड़ी हुई। है कोई ऐसा दूसरा उदाहरण। ऊँचे से ऊँचा माने जाने वाले ब्राह्मण परिवार के विद्वानों ने उनसे संन्यास लिया। जाटों की प्रतिष्ठा को देश भर में चार चाँद लगाने वाले आर्य संन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द पर आर्यसमाज ही नहीं प्रत्येक देशसेवक व धर्माभिमानी अभिमान करता है। मालवीय जी की महानता काशी के ब्राह्मणों से पूछिए। वह महामना मालवीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को जिस श्रद्धा भक्ति से देखते थे उसे शब्दों में कौन बता सकता है?

१८. आर्यसमाज के सेवक देश-धर्महित तिल-तिल जलना और जीना जानते हैं। दिखाओ! तुमने महात्मा फूलसिंह की कोटि का हरियाणा को कोई बलिदानी सुधारक दिया। माता लाडकुँवर विश्व की पहली महिला थी जिसे आधुनिक काल में रेवाड़ी समाज ने अपना प्रधान चुना। तब संसार में महिला को वोट देने की कहीं भी अधिकार ही नहीं था। यह है आर्यसमाज की विलक्षणता। काँग्रेस के मञ्च से ''लट्ठ बजावन का हरियाणवी घोष'' गुँजाने वाला पहला देशभक्त हमारा चौ. पीरुसिंह था। कोई और नहीं।

१९. किसी भी पुराने राष्ट्रीय नेता की जीवनी में सन् १८५७ की क्रान्ति के किसी अग्रणी का नाम तो कामरेड दिखा दो तो हम आपके पाँव छू लेंगे। देश के महापुरुषों में केवल ऋषि दयानन्द जी के पत्र-व्यवहार में और जीवन-चरित्र में भी राव तुलाराम का नाम मिलेगा। श्यामजीकृष्ण वर्मा तथा राजस्थान के क्रान्तिकारी बारहट परिवार के नाम ऋषि के पत्र और ऋषि के नाम उनके पत्र मिलेंगे।

२०. ऋषि के सत्यार्थप्रकाश और ऋषि के जीवन-चरित्र में (जालन्धर) आप सन् १८५७ की क्रान्ति का उल्लेख तथा अंग्रेज के अत्याचारों की घोर निन्दा पढ़ेंगे। महर्षि दयानन्द ने, स्वामी श्रद्धानन्द ने तत्कालीन कई नेताओं व धर्माचार्यों (यथा सर सैयद तथा श्रद्धाराम फिलौरी) के समान १८५७ की क्रान्ति को न तो कभी ग़दर (mutiny) कहा और लिखा।

याद रखिये रात-रात में लोग मदनलाल ढींगरा तथा बिस्मिल और भगतसिंह बनकर नहीं उठ खड़े होते। दबले-कुचले देशों व जातियों को तैयार करना पड़ता है। काँग्रेस को जन्म अंग्रेज ने दिया। आर्यसमाज के इतिहास से किसी अंग्रेज को दिये गये आदर को एक अपवाद व नीतिगत घटना न मानकर तुम लोग आर्यसमाज की प्रखर देशभक्ति को चुनौती देते हो। काँग्रेस के जन्म से बहुत पहले पश्चिमी जगत् में जिस पहले भारतीय विचार, नेता और संगठन पर एक लम्बा लेख छपा वह नेता ऋषि दयानन्द था और वह संगठन आर्यसमाज था। गोरों से पूछो कि आर्यों के दिल में क्या अग्नि धधक रही थी। शिरोल से पूछा दयानन्द और उसका आर्यसमाज क्या है? रामपाल व ओवैसी तुम्हारी पीठ भले ही थपथपा रहें। तुम लोग आर्यसमाज को कितना ही कोस लो, इतिहास जानता है सन् १९०७ में इंग्लैण्ड में एक पत्र में महाशय कृष्ण आर्य नेता पर यह लिखा गया था, " A Fiery Editor of Lahore" लाहौर का एक आग्नेय पत्रकार। इससे बढ़कर किसी भी नेता व संस्था पर गोरों ने कुछ लिखा व कहा हो तो बताओ।

लेखराम की आगे हिया में लेकर निकला आगे कौन?- पं. लेखराम जी के जीवन में ऐसी कई घटनायें मिलती हैं कि जब उन्हें किसी वैदिकधर्म-विरोधी द्वारा वेद, ऋषि दयानन्द अथवा आर्य सिद्धान्तों के विरुद्ध किसी पुस्तक के प्रकाशन का पता चलता था तो वह उसके उत्तर में कुछ लिखना-छपवाना चाहते थे। आर्यसमाज उत्तर देने में प्रमाद करे तो वह तड़प उठते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी से, श्री रामविलास शारदा आदि कई प्रमुख आर्यों से इसी बात पर रुष्ट होने की भी उनकी कुछ रोचक व शिक्षाप्रद घटनायें मिलती हैं। अब तो आर्यसमाज में ऐसे-ऐसे भद्रपुरुष देखे जा सकते हैं जो दूसरों के उत्तर में या खण्डन में कुछ

लिखने व बोलने को अनुचित मानते और विरोध करते हैं।

बठिण्डा पंजाब निवासी श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त अपने क्षेत्र के एक प्रतिष्ठित मिशनरी आर्यसमाजी हैं। आपकी चौथी पीढ़ी आर्यसमाज की सेवा में सक्रिय चली आ रही है। उनके परिवार का समर्पण-भाव व धर्म-रक्षा की लगन का श्रेय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द को जाता है। गत २५ वर्षों में धर्मप्रचार के लिये आपने २५-३० छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित करवाई हैं। आर्यसमाज के कई पूजनीय पुराने विद्वानों साहित्यकारों की कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का उर्दू से या तो अनुवाद करके छपवाया है या उन्हें फारसी लिपि से देवनागरी में सम्पादित करके सहस्त्रों व्यक्तियों तक पहुँचाया है। ऐसी पुस्तकों में श्रद्धेय लक्ष्मणजी कृत निष्कलङ्क दयानन्द और पं. चमूपति जी की कई अद्‌भुत पुस्तकें हैं।

भारत भर में आर्यों द्वारा प्रकाशित साहित्य पर सदा ही इस सेवक की दृष्टि रही है। किसी भी सभा ने पूरे देश में गत २५-३० वर्षों में इतना साहित्य न छपवाया है न खपाया है। पाठकों को पता होना चाहिये कि आप किसी भी समाज के सदस्य तक नहीं। इनका काम बस ऋषि मिशन की सेवा है। श्री मदनलाल जी आर्य गिदड़बाहा और इस विनीत से जुड़े रहते हैं। साहित्य प्रकाशन के लिये किसी से आर्थिक सहायता भी माँगते इन्हें नहीं देखा गया, परन्तु आपके व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव है कि धर्म - भाव वाले कई सज्जन जो आर्यसमाजी नहीं हैं वे बिन माँगे इनके ऐसे कार्यों में सहयोगी बन जाते हैं। कई बड़े-बड़े गुरुकुलों के आचार्यों तथा आर्यसमाज के जाने-माने व्यक्तियों से आपका स्वाध्याय कहीं व्यापक व गहन है।

देश में विख्यात उर्दू महाकवि श्री दुर्गासहाय सुरूर महर्षि के जीवनकाल में जन्मे। आप पं. लेखराम जी के चरणानुरागी थे। उनकी प्रतिभा का लोहा मौलाना हाली, डॉ. इकबाल, सर अब्दुल कादिर सब मानते थे, परन्तु उर्दू साहित्य के इतिहास में उनका नाम तक नहीं मिलता था। इन पंक्तियों के लेखक ने पचास वर्ष तक निरन्तर अपने लेखों व पुस्तक में सुरूर जी को उनका समुचित स्थान दिलाने के लिये आन्दोलन छेड़े रखा। परोपकारी के पाठक यह जानकर हर्षित होंगे और गौरव करेंगे कि श्री जितेन्द्र कुमार जी की सूझबूझ से अब पाँच युवा साहित्यप्रेमी सुरूर जी पर पीएच.डी. करेंगे। इस विषय में आगे कभी विस्तार से लिखा जावेगा।

डॉ. अलिफ़ नाज़िम का आठ सौ पृष्ठों से भी कहीं अधिक का ग्रन्थ स्थिति सामान्य होते हमें मिल जावेगा। इसमें सुरूर जी का काव्य-संग्रह तो है ही, उनके जीवन व साहित्य पर श्री डॉ. अलिफ नाज़िम जी को और इस लेखक लिखित तीस-तीस पृष्ठ की सामग्री भी होगी। ऋषि दयानन्द, पं. लेखराम, महाशय कृष्ण और पं. चमूपति जी की भी चर्चा मिलेगी। किसी देशभक्त मुसलमान द्वारा आर्यसमाज विषयक तैयार किया गया यह आज तक का पहला ग्रन्थ है। इसकी सब व्यवस्था श्री जितेन्द्र जी ने ही की है। हरियाणा के कर्मठ आर्यवीर विमोचन के लिये भव्य समारोह की व्यवस्था करेंगे। जीवन की साँझ में इसमें भाग लेना अपने लिये आनन्ददायक व ऐतिहासिक घटना होगी।

श्री पं. इन्द्रजित् देव का एक प्रश्न- माननीय श्री इन्द्रजित् देव जी ने श्री अमर स्वामी जी के एक लेख में नीलकण्ठ शास्त्री महाराष्ट्रिय पादरी (पूर्व संस्कृत ब्राह्मण) से अपने शास्त्रार्थ का उल्लेख किया है। उस लेख से एक उलझन पैदा हो गई। आपने इन पंक्तियों के लेखक को चलभाष पर और पत्र लिखकर यह उलझन सुलझाने को कहा। अमर स्वामी जी के लेख में कुछ गड़बड़ तो है तथापि तथ्य क्या है यह सब समझ में आ गया। नीलकण्ठ शास्त्री का उल्लेख मेरे कई ग्रन्थों में है, विशेषरूप से ऋषि जीवन में तथा 'मैक्समूलर का ऐक्सरे' में।

नीलकण्ठ के पौत्र का नाम पादरी फ्रैंक जॉनसन था। ज्वालापुर महाविद्यालय में अमर स्वामी जी से कभी उसका शास्त्रार्थ हुआ तो वह पराजित हो गया। तब उसके नयन सजल हो गये। उसने रोते हुये कहा, ''आर्यसमाजियो तब तुम कहाँ थे जब मेरा दादा ईसाई बन गया?'' उसका भाव स्पष्ट था कि आप तब मेरे दादा को बचा लेते तो मैं आज ईसाई न बनता। प्रश्न मुख्य तो यह है कि यह क्या वही जॉनसन पादरी है जिसका श्रीनगर में पं. गणपति शर्मा से शास्त्रार्थ हुआ था? निवेदन है कि वह गोरा पादरी था। वह

जॉनसन था या फ्रैंक जॉनसन था।

जब नीलकण्ठ शास्त्री ईसाई बना था तब तक आर्यसमाज स्थापित ही नहीं हुआ था। उसकी ऋषि से भेंट और वार्ता भी हुई। उसे ऋषि ने निरुत्तर कर दिया। उसके सामने काशी, प्रयाग, हरिद्वार के ब्राह्मण टिक न पाये। पं. गंगाप्रसाद सनातनी विद्वान् नेता ने लिखा है कि यह तो ऋषि दयानन्द ही थे जिन्होंने नीलकण्ठ की बोलती बन्द कर दी और वह भाग खड़ा हुआ।

इसी ने महाराजा रणजीत सिंह जैसे देशभक्त के पौत्र महाराजा दिलीप सिंह को ईसाई बनाया था। ऋषि दयानन्द और आर्यों के हृदय पर यह एक घाव था। इसे चर्च ने आर्यसमाज के विस्तार को रोकने के लिये लाहौर भेजा। वहाँ यह आर्यों को पीठ दिखाकर भागा था। आश्चर्य का विषय है कि तब सिखों ने महाराजा दिलीपसिंह को धर्मच्युत करनेवाले के विरोध में दो शब्द भी न कहे।

जब ऋषि पूना गये तो नीलकण्ठ को ऋषि के विरोध के लिये चर्च ने वहाँ भी भेजा था। वहाँ न इसको श्रोता मिले और जो मिले भी वे इसके व्याख्यान को सुनते ही नहीं थे। सब ऊँघते रहते थे। ऐसा ऋषि के विरोधी और लोकमान्य तिलक के गुरु ने निबन्ध माला में लिखा है।

चर्च के लिये इसकी सेवाओं का मान करते हुये इसे इंग्लैण्ड जाने का गौरव प्राप्त हुआ। वहाँ महारानी विक्टोरिया से इसकी भेंट करवाई गई। दिलीप सिंह भी तो इंग्लैण्ड में ही रहने लगा था। उसकी वहीं एक मेम से शादी हो गई।

नीलकण्ठ की मैक्समूलर से भेंट करवाई गई। मैक्समूलर ने ईसा के इस समर्पित मिशनरी की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसे बड़े से बड़े ईसाई से उसने बड़ा माना है। उसने स्वामी विवेकानन्द की और नीलकण्ठ शास्त्री की प्रशंसा के पुल बाँधे हैं, परन्तु नीलकण्ठ ने यह लिखा है कि मैक्समूलर संस्कृत न तो समझ सकता था और न बोल सकता था। इस प्रकार नीलकण्ठ ने ऋषि के कथन की पुष्टि कर दी-

जहाँ वृक्ष न हो वहाँ एरण्ड प्रधान।

आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि स्वामी विवेकानन्द मैक्समूलर द्वारा श्रीकृष्ण के घोर अपमान करने पर भी उसके विरुद्ध एक वाक्य न बोल पाये न लिख सके। याद रहे कि पादरी नीलकण्ठ पूना का ही संस्कृतज्ञ ब्राह्मण था।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

ऐतिहासिक कलम से....

विद्या-अविद्या और बन्ध-मोक्ष विषयों की व्याख्या

(सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास के आधार पर)

श्री जगदेवसिंह 'सिद्धान्ती'

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

ज्ञान का उत्कर्ष विद्या और अपकर्ष है अविद्या। अविद्या कारण है बन्धन का और विद्या मार्ग खोलती है मोक्ष का। सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में ऋषि ने विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष में जीव की सत्ता, मोक्ष से पुनरावृत्ति, मोक्ष साधन, परमात्मा की व्याख्या, कर्मफल आदि विषयों का वैज्ञानिक युक्तिसंगत विवेचन कर संसार के सभी पक्षों को राह दिखायी। सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् विचारक श्री जगदेवसिंह 'सिद्धान्ती' ने ऋषि मन्तव्यों को हृदयंगम कराने का लेख में सफल प्रयास किया है। -सम्पादक

विद्यां चऽविद्यां च यस्तद्वेदोभय ᳩं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

यजुर्वेद ४०.१४

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ-ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

अविद्या का लक्षण

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।।

योग द.। साधन पाद । सूत्र ५

जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य अर्थात् जो कार्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योग बल से यही देवों का शरीर सदा रहता है- वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है, अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के और मिथ्याभाषण चोरी आदि अपवित्र में पवित्रबुद्धि। दूसरा, अत्यन्त विषय-सेवन रूप दुःख में सुखबुद्धि आदि। तीसरा, अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है, यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान-विद्या कहाती है । इसके विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है। अर्थात्

वेत्ति यथावत्तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या,
यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति
भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया साऽविद्या

जिससे पदार्थ का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है अर्थात् कर्म-उपासना अविद्या इसलिए है कि वह बाह्य और आन्तर क्रिया विशेष है ज्ञान विशेष नहीं। इसी से मन्त्र में कहा है कि बिना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुःख से पार कोई नहीं होता अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पाषाणमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्या ज्ञान से बन्ध होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता इसलिए धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म

करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है।

अधर्म अज्ञान में बद्ध हुए जीव की मुक्ति नहीं होती। जीव के बन्ध और मोक्ष स्वभाव से नहीं होते किन्तु निमित्त से होते हैं। स्वभाव से होते तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती। जीव और ब्रह्म स्वरूप से एक नहीं हैं। नवीन वेदान्तियों का यह कहना सत्य नहीं कि जीव ब्रह्मस्वरूप होने से परमार्थ में बद्ध नहीं तो मुक्ति क्या? जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फल भोग रूप बन्धन में फँसता, उसके छुड़ाने का साधन करता, दु:ख से छुटने की इच्छा करता और दु:खों से छूट कर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है। यह कहना मिथ्या है कि जीव तो पाप-पुण्य रहित साक्षी मात्र है और शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म हैं और आत्मा निर्लेप है, अपितु सत्य यह है कि देह और अन्त:करण जड़ हैं उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसको स्पर्श करता है उसी को शीत-उष्ण का भान और भोग होता है, वैसे ही प्राण भी जड़ हैं न उनको भूख न पिपासा किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा-तृषा लगती है, वैसे ही मन भी जड़ है न उसको हर्ष न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष-शोक, सुख-दु:ख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी-दु:खी होता है, वैसे ही अन्त:करण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से संकल्प-विकल्प, निश्चय, स्मरण अभिमान का करनेवाला दण्ड और मान्य का भागी होता है, जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है, तलवार नहीं होती वैसे ही देहेन्द्रिय अन्त:करण और प्राणरूप साधनों के अच्छे-बुरे कर्मों का कर्त्ता जीव सुख-दु:ख का भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करनेवाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है, वह जीव है वह ईश्वर नहीं है। इसलिए जीव साक्षी नहीं है।

नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं कि-(१) ''ब्रह्म ही एक चेतन तत्त्व है, जीव की पृथक् स्वतन्त्र चेतन सत्ता नहीं। (२) अन्त:करणावच्छिन्न उपाधि के कारण ब्रह्म ही जीव कहलाता है। (३) ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अन्त:करण में पड़कर जीव संज्ञा हो जाती है। (४) अध्यारोप= अन्य वस्तु में अन्य वस्तु को आरोप करके जिज्ञासा को बोध कराना होता। वास्तव में सब ब्रह्म ही है।'' उपर्युक्त चारों बातें मिथ्या हैं, क्योंकि (१) ब्रह्म से जीव की स्वतन्त्र सत्ता है, दोनों के धर्मों में भेद है। ब्रह्म सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी और सत्यसंकल्प आदि गुणोंवाला है, परन्तु जीव इससे विपरीत एकदेशी, परिच्छिन्न, अल्पज्ञ और अच्छे-बुरे गुणों का धारण और कर्मों का करने वाला है। (२) अन्त:करणावच्छिन्न ब्रह्म जीव नहीं हो सकता। सत्यसंकल्प सर्वव्यापक अन्त:करण में क्यों बद्ध होवे-कोई कारण नहीं। (३) ब्रह्म का प्रतिबिम्ब हो ही नहीं सकता। प्रतिबिम्ब साकार वस्तु का साकार वस्तु में होता है। ब्रह्म निराकार है तब उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता, जैसाकि आकाश का प्रतिबिम्ब नहीं। अज्ञान से लोग जल में आकाश का प्रतिबिम्ब समझते हैं जो कि नीला-नीला दीखता है। यह आकाश का प्रतिबिम्ब नहीं किन्तु आकाश में पृथ्वी और जल के कणों का प्रतिबिम्ब है। (४) अध्यारोप करने वाला जीव जब नवीनवेदान्तियों के मत में ब्रह्म ही है, ब्रह्म ने ब्रह्म में ही आरोप करके मिथ्या कल्पना क्यों कर ली? यह कितना अनर्थ है। चले तो जीव को ब्रह्म बनाने, यहाँ ब्रह्म का स्वरूप ही बिगाड़ डाला। इस प्रकार के दोष ब्रह्म के नहीं हैं। मिथ्या संकल्प करने वाले जीवों के हैं। जो कि अपने को ब्रह्म माने बैठे हैं। जीव को ब्रह्म मानना मिथ्या है। जो सर्वव्यापक है वह परिच्छिन्न, अज्ञान और बन्ध में कभी नहीं गिरता, क्योंकि अज्ञान परिच्छिन्न एकदेशी अल्पज्ञ जीव होता है सर्वज्ञ ब्रह्म नहीं।

मुक्ति और बन्ध

मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्ति:

जिसमें छूट जाना हो उसको मुक्ति कहते हैं। जीव इच्छापूर्वक दु:ख से छूट कर सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं।

परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म-अविद्या-कुसङ्ग-कुसंस्कार-बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित, न्याय धर्म की वृद्धि करने,

परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्याय धर्मानुसार ही करे इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञा भंग करने आदि काम से बन्ध होता है।

मुक्ति में जीव ब्रह्म में रहता है अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है। मुक्ति में जीव का स्थूल शरीर न होने पर भी उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब बने रहते हैं, भौतिक संग नहीं रहता। जैसे-

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनोभवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तं भवति, अहङ्कुर्वाणोऽअहंकारो भवति।।

शतपथ-काण्ड १४

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते, किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं- जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिए घ्राण, संकल्पविकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिए बुद्धि, स्मरण करने के लिए चित्त और अहङ्कार के अर्थ अहङ्कार रूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और संकल्प मात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

जीव की शक्ति मुख्य एक प्रकार की है, परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्ध-ग्रहण तथा ज्ञान इन चौबीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव हैं। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है। मुक्ति में जीव का ब्रह्म में लय अथवा नाश नहीं होता अन्यथा मुक्ति का आनन्द कौन भोगता? मुक्ति जीव की यही है कि दु:खों से छूट कर आनन्दस्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

१- अभावं बादरिराह ह्येवम्।।

वेदान्त ४-४-१०

२-भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।।

वेदान्त ४-४-११

३-द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः।।

वेदान्त ४-४-१३

इन वेदान्त शारीरक सूत्रों में १- व्यास जी के पिता बादरि मुक्ति में जीव का और उसके साथ मन का भाव मानते हैं अर्थात् जीव और मन का लय पराशर जी नहीं मानते। २- जैमिनि आचार्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियों और प्राणादि को भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं। ३- व्यास मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानते हैं अर्थात् शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता पापाचरण, दु:ख अज्ञानादि का अभाव मानते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।

कठोपनिषद् अ. २ व ६ मं. १

जब शुद्ध मन युक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ जीव के साथ रहती हैं, बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते है।

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽ विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति।।

छान्दो. ८.12.५-६

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते।। य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति।। छान्दो. ८.१२.५-६

मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याशरीरस्यात्मनोधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये

स्पृशतः।। छान्दो. ८.१२.१

जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्वपाप-जरा-मृत्यु-शोक-क्षुधा-पिपासा से रहित सत्यकाम सत्यसंकल्प है, उसकी खोज और उसी को जानने की इच्छा करनी चाहिये, जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है।

जो परमात्मा को जान के मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध, दिव्यनेत्र और शुद्ध मन से सब कामों को देखता प्राप्त होता हुआ रमण करता है। जो यह ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके मोक्ष, सुख को भोगते हैं और इसी परमात्मा को जोकि सबका अन्तर्यामी आत्मा है उसकी उपासना मुक्ति को प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं इससे उनको सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात जो-जो संकल्प करते हैं वह-वह लोक और वह-वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर को छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते।

जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि हे पूजित धनयुक्त पुरुष! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है और जैसे सिंह के मुख में बकरी होवे वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है सो शरीर इस मरण और शरीररहित जीवात्मा का निवास स्थान है इसलिए यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है, क्योंकि शरीरसहित जीवों की सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती ही है और जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख-दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

१. न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तत इति।।

छान्दो. ८.१५.७

२. अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।।

वेदान्त द. ४।४।१३

३. यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

भगवद् गीता

इन उपर्युक्त तीन वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता तो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है-

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च।।
२. आनेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च।।

ऋग्वेद. १.२४.१-२

१. हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाश-रहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है, हमको मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता-पिता का दर्शन कराता है? (२) हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है, वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सबका स्वामी है। ३।।

इदानीमेव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।। सांख्य १.१५९। जैसे इस समय बन्धमुक्त जीव है वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त उच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती।

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।। १।।

न्याय द. १।१।२२

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।। २।।

न्याय द. १।१।।२।।

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है, क्योंकि जब मिथ्याज्ञान, अविद्या, लोभादिदोष, विषय, दुष्टव्यसनों में प्रवृत्ति, जन्म और दुःख का उत्तर उत्तर के छूटने के पूर्व पूर्व के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है। यहाँ अत्यन्त शब्द का अर्थ अत्यन्ताभाव नहीं है किन्तु अत्यन्त का अर्थ बहुत है, जैसे **अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्त्तते** बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है। इसी प्रकार यहाँ भी अत्यन्त शब्द का अर्थ जानना चाहिये। अतः दुःख का अत्यन्त विच्छेद सदा बना नहीं रहता।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

मुण्डक ३.२.६

जो मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि चार लाख बतीस सहस्र वर्ष का कलियुग, आठ लाख चौंसठ सहस्र वर्ष का द्वापर, बारह लाख छियानवें सहस्र वर्ष का त्रेता और सत्रह लाख अठ्ठाईस सहस्र वर्ष का कृतयुग होता है। चारों को मिलाकर एक चतुर्युगी होती है अर्थात त्रितालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की ऐसी दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का एक परान्तकाल होता है। दूसरा प्रकार यह है कि उपर्युक्त एक सहस्र चतुर्युगी की सृष्टि आयु और एक सहस्र चतुर्युगी का प्रलय काल। सृष्टि को **अहः** दिन और **प्रलय** को रात्रि कहा गया है। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय का काल एक अहोरात्र हुआ। ऐसे सौ वर्ष=(३६००० छत्तीस सहस्र अहोरात्रों) का एक परान्त काल होता है। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।

मुक्ति से पुनः संसार में आना ही पड़ता है, क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं- इनका फल अनन्त नहीं हो सकता और मुक्ति से लौटकर संसार में न आवें तो एक समय संसार का विच्छेद हो जाय। यदि यह मानें कि परमात्मा नये जीवों को पैदा करता है तो जीव अनित्य हो जाते हैं, तब उनका नाश भी मानना पड़ेगा। ऐसी दशा में मुक्ति का सुख कौन भोगे? और मुक्ति में जाते रहें, लौटें नहीं तो मुक्ति में भीड़-भड़क्का हो जावे। इसके अतिरिक्त सुख-दुःख सापेक्ष पदार्थ हैं, यदि दुःख की सत्ता न हो तो सुख का भान भी कुछ नहीं हो सकता। कटु रस न होवे तो मधुर और मधुर रसन होवे तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वाद के एक रस के विरुद्ध होने से दोनों की परीक्षा होती है। ईश्वर अन्तवाले कर्मों का फल अनन्त देवे तो न्याय नष्ट हो जाय। नये-नये जीवों को उत्पन्न जिस कोष से परमात्मा करे और उस कोष में आय न होवे तो कभी न कभी वह कोष रिक्त हो ही जावेगा। अतः मुक्ति में जाना और वहाँ से लौटना यही व्यवस्था ठीक है। ब्रह्म में लय हो जाना तो समुद्र में डूब मरना है।

जीव मुक्त होकर भी शुद्ध स्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण-कर्म-स्वभाव वाला होता है। परमेश्वर के सदृश कभी नहीं। मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं अपितु अत्यन्त दीर्घ समय के लिए दुःखों से छूटकर सुख में रहना साधारण बात नहीं। प्रतिदिन हमें भूख लगती है, उसको हटाने के लिए भोजन करते हैं तब मुक्ति के लिए यत्न करना तो अत्यावश्यक है।

मुक्ति के कुछ साधन तो विद्या-अविद्या के प्रकरण में कहे गये हैं, परन्तु विशेष उपाय ये हैं-(१) साधन- जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्या भाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे, क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय अवश्य करें।

पञ्च कोषों का विवेचन करें। पञ्च कोष ये हैं

(१) अन्नमय- त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है।

(२) प्राणमय- जिसमें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान पाँचों प्राण हैं।

(३) मनोमय- इसमें मन के साथ अहंकार और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

(४) विज्ञानमय- इसमें बुद्धि, चित्त और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

(५) आनन्दमय- इसमें प्रीति, प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिक आनन्द और आधार कारणरूप प्रकृति है। इन पाँचों कोषों से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

तीन अवस्था-(१) जागृत, दूसरी स्वप्न और तीसरी सुषुप्ति है।

तीन शरीर-(१) स्थूल जो दीखता है। (२) पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्रह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है।

इसके दो भेद हैं- भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है और (२) अभौतिक जीव के स्वाभाविक गुणरूप हैं। यह पूरा स्वाभाविक शरीर मुक्ति में भी साथ रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है (३) तीसरा कारण शरीर जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़निद्रा होती है। यह प्रकृतिरूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिये एक समान है (४) तुरीय शरीर वह कहाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्द स्वरूप में मग्न जीव होते हैं, इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है। इन सब कोष अवस्थाओं से जीव पृथक् है। यही जीव सबका प्रेरक सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता, भोक्ता कहाता है। बिना जीव के ये सब जड़ पदार्थ हैं।

जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शङ्का, लज्जा उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है, जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दु:ख भोगता है।

(२) दूसरा साधन-वैराग्य है। विवेक से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना।

(३) तीसरा साधन-षट् सम्पत्ति है अर्थात् शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान (चित्त की एकाग्रता) ये ६ मिलकर तीसरा साधन कहाता है।

४- चौथा साधन-अधिकारी, सम्बन्ध, विषयी और प्रयोजन ये चार अनुबन्ध मिलकर चौथा साधन कहाता है।

५- इनके पश्चात् पाँचवाँ साधन- श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार- ये श्रवण चतुष्टय पाँचवाँ साधन है।

सदा तमोगुण और रजोगुण से पृथक् रहकर सत्य अर्थात् शान्त-प्रकृति, पवित्रता, विद्या और विचारादि गुणों को धारण करे। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इनका यथायोग्य व्यवहार करे। नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घण्टा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे। जिससे भीतर के मन आदि पदार्थों का साक्षात्कार होवे।

अविद्या ऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा: पञ्च क्लेशा: ।।

योग द. २.३

इन पाँच क्लेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ा के ब्रह्म को प्राप्त होके मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिए।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय भिन्न प्रकार की मुक्ति मानते हैं। जैसे मोक्ष शिला, शिवपुर, चौथा आसमान, सातवाँ आसमान, श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोक, सालोक्य, सानुज्य, सारूप्य और सायुज्य। ये मुक्तियाँ नहीं किन्तु एक प्रकार का बन्धन हैं, क्योंकि ये लोग स्थान विशेष में मुक्ति मानते हैं, वहाँ से छूट जावें, तो मुक्ति छूट गई।

मुक्ति तो यही है, जहाँ इच्छा हो वहाँ विचरे, कहीं अटके नहीं। न भय, न शङ्का, न दु:ख होता है।

जन्म एक नहीं, अनेक होते हैं, परन्तु पूर्वजन्म की बातों का स्मरण नहीं होता, क्योंकि जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं इसलिये स्मरण नहीं रहता। जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है, अत: पूर्व और आगे के जन्म के वर्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है जीव के नहीं। संसार में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता, सुख, दु:ख देखकर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। जैसे एक वैद्य और अवैद्य को रोग होवे तो वैद्य रोग का कारण जान लेता है, अवैद्य नहीं जान सकता, क्योंकि उसने वैद्यक विद्या नहीं पढ़ी। हाँ ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी यह जान लेता है कि मुझसे कोई कुपथ हो गया है, वैसे ही जगत् में विचित्र सुख-दु:ख आदि की घटती-बढ़ती देखके पूर्व-जन्म का अनुमान हो सकता है। पूर्वजन्म की व्यवस्था के अभाव में परमेश्वर पक्षपाती हो जावे, क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्य आदि दु:ख और बिना पूर्व सञ्चित पुण्य के राज्य, धनाढ्यता और निर्बुद्धिता क्यों दी? परमात्मा न्यायकारी है। परमात्मा जीवों के कर्मानुसार ही फल और फल के प्रमुख साधन देता है। जीवों को बिना पाप-पुण्य के सुख-दु:ख देने से परमेश्वर पर दोष आता है। बिना कर्मफल की न्याय-व्यवस्था से सब जीव अधर्म युक्त हो जावें और धर्म क्यों करें? इसलिए पूर्वजन्म के पाप- पुण्य के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा

पूर्वजन्म के अनुसार भविष्यत् जन्म होते हैं। सब जीव स्वरूप से एक समान हैं, परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं। मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता-आता है। जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता है। जब पुण्य-पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है। इसमें भी पुण्य पाप के उत्तम मध्यम निकृष्ट होने से मनुष्य आदि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप-पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है।

जब शरीर से निकलता है, उसी का नाम **मृत्यु** और शरीर के साथ संयोग होने का नाम **जन्म** है। जब शरीर छोड़ता है तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है। पश्चात् परमेश्वर उस जीव के पाप-पुण्यानुसार जन्म देता है। वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर बाहर आता है। जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हो तो पुरुष शरीर में प्रवेश करता है और नपुंसक गर्भ स्थिति के समय स्त्री-पुरुष के शरीर से सम्बन्ध करके रजवीर्य के बराबर होने से होता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म-मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता, क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकल्प पर्यन्त जन्म- मरण दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।

मुक्ति अनेक जन्मों में होती है क्योंकि-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

मुण्डक २.२.८

जब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गाँठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर माप रहा है उसमें निवास करता है। मुक्ति में जीव की पृथक् सत्ता रहती है, जो परमेश्वर में मिल जाय तो मुक्ति का सुख कौन भोगे और मुक्ति के संसाधन निष्फल हो जायें, वह तो मुक्ति नहीं किन्तु जीव का प्रलय समझना चाहिये। जब जीव परमेश्वर की आज्ञा पालन उत्तम कर्म, सत्संग, योगाभ्यास पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्ति को पाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।।

तैत्तिरीय ब्रह्मानन्द वल्ली। अनु. १

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्मा को जानता है वह उस व्यापक ब्रह्म में स्थित होके उस **विपश्चित** अनन्त विद्यायुक्त ब्रह्म के साथ सब कामों को प्राप्त होता है, यही मुक्ति कहाती है।

जैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है, वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि-विद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में अर्थात् जितने लोक ये दीखते हैं और नहीं दीखते उन सबमें घूमता है। वह सब पदार्थों को जो उसके ज्ञान के आगे हैं, देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है। यही सुख विशेष स्वर्ग और विषय तृष्णा में फँसकर दुःख विशेष भोग करना नरक कहाता है। **स्वः** सुख का नाम है **स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति** जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है। उससे विपरीत दुःखभोग को नरक कहा जाता है। सब जीव स्वभाव से सुख-प्राप्ति की इच्छा

और दु:ख का वियोग होना चाहते हैं, परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुख का मिलना और दु:ख का छूटना न होगा, क्योंकि जिसका कारण अर्थात् मूल होता है, वह नष्ट कभी नहीं होता। जैसे:-

छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दु:खं नश्यति।

जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है, वैसे पाप को छोड़ने से दु:ख नष्ट होता है। देखो मनुस्मृति में पाप और पुण्य की बहुत प्रकार की गति।

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्।।
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्।। २।।
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्।
एतद् व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः।। ३।।
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्म क्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुण लक्षणम्।। ४।।
आरम्भरुचिताऽधैर्य्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयोपसेवा चाजस्त्रं राजसं गुणलक्षणम्।। ५।।
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्।। ६।।
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्।। ७।।
देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः।
तिर्थक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः।। ८।।

मनुस्मृति-अ. १२ श्लोक ८, ९, २६, ३१, ३२, ३३, ३८, ४०।।

अर्थात् यह जीव मन से जिस शुभ वा अशुभ कर्म को करता है उसको मन, वाणी से किये को वाणी और शरीर से किये को शरीर अर्थात् सुख दु:ख को भोगता है। १।

जो नर शरीर से चोरी, परस्त्री गमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये पापकर्मों से पक्षी और मृगादि तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चाण्डाल आदि का शरीर मिलता है।२।

जब आत्मा में ज्ञान हो तब सत्त्व, जब अज्ञान रहे तब तम: और जब रागद्वेष में आत्मा लगे तब रजोगुण जानना चाहिए। ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं। ३।

जो वेदों का अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का निग्रह, धर्म-क्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है। यही सत्त्व गुण का लक्षण है।४।

जब रजोगुण का उदय, सत्त्व और तमोगुण का अन्तर्भाव होता है, जब आरम्भ में रुचिता, धैर्य, असत्कर्मों का ग्रहण, निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समझना कि रजोगुण प्रधानता से मुझे में वर्त्त रहा है। ५।

जब तमोगुण का उदय और अन्य दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य का नाश, क्रूरता का होना, नास्तिकता अर्थात् वेद और ईश्वर में श्रद्धा का न रहना, भिन्न अन्त:करण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव, किन्हीं व्यसनों में फँसना होवे तब तमोगुण का लक्षण विद्वान् को जानना चाहिए।। ६।।

तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का अर्थ संग्रह की इच्छा और सत्त्व गुण का लक्षण धर्म की सेवा करना है, परन्तु तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है।।७।।

अब जिस-जिस गुण से जिस-जिस गति को जीव प्राप्त होता है उस-उस को आगे लिखते हैं-

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणी होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं। इन प्रत्येक गुणों की भी उत्तम, मध्यम और अधम तीन-तीन प्रकार की गति होती हैं।।८।।

इस प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुण युक्त वेग से जिस-जिस प्रकार जीव कर्म करता है उस-उसको उसी-उसी प्रकार फल प्राप्त होता है। जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फँसकर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें क्योंकि-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।। १।।
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम।। २।।

योग द. १.२-३

मनुष्य रजोगुण तमोगुण युक्त कर्मों से मन को रोक (शुद्ध सत्त्वगुण युक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुण युक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्र भाग में चित्त को ठहरा रखना निरुद्ध) अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना।। १।।

जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सबके द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है।।२।।

इत्यादि साधन मुक्ति के लिए और करें और-

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।।

सांख्य द. १.१

जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीर सम्बन्धी पीड़ा, आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है इस त्रिविष दुःख को छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है।

टिप्पणियाँ

१. कर्म का ही आन्तरिक भेद उपासना है। आन्तरिक क्रिया विशेष होने से ज्ञान विशेष नहीं है। अतः कर्म और उपासना को मन्त्र में अविद्या शब्द से कहा गया है, परन्तु मृत्यु दुःख से पार करने के लिए कर्म और उपासना अनिवार्य है।

२. मुक्ति का साधन केवल ज्ञान, केवल कर्म अथवा केवल उपासना नहीं है। अपितु शुद्धकर्म, शुद्ध उपासना और शुद्ध ज्ञान तीनों के सहभाव से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। कर्म की अवहेलना नहीं की जा सकती।

३. मुक्ति में जीव का संकल्पमय शरीर होता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि जब संकल्प किया तब ही स्थूल शरीर बना लिया, अपितु संकल्प का करना मन का धर्म है, अतः मुक्ति में जीव का दिव्य मानसिक शरीर होता है। इसी संकल्प के द्वारा जीव मुक्ति के आनन्द को भोगता है।

४. मुक्ति से लौटने के मन्त्रों पर ऋषि दयानन्द ने स्वतः प्रमाण वेद के सम्मुख आर्ष ग्रन्थों की भी वेद-विरुद्ध होने से प्रबल शब्दों में उपेक्षा की है।

५. **न च पुनरावर्तते** -(छान्दो.) और **अनावृत्ति शब्दात्** (वेदान्त द.) की नवीन वेदान्तियों ने मुक्ति से न लौटने के पक्ष में ढाल ग्रहण की। ऋषि दयानन्द ने **कस्य नूनं**...और **अग्नेर्वयं**...ऋग्वेद के दो मन्त्रों से इस ढाल का खण्डन कर दिया। इससे एक बहुत बड़ा उपकार यह हुआ कि आर्ष ग्रन्थों में भी वेद-विरुद्ध वचन का त्याग करने का साहस विद्वानों को हुआ। यदि इन उपनिषद् और दर्शन में आये **आवर्तन** और **अनावृत्ति** शब्द का नवीन वेदान्ती शुद्ध अर्थ करते तो ऐसे आग्रह की आवश्यकता न होती। **आवर्त्तन** और **आवृत्ति** का अर्थ है अभ्यास, बार-बार, चक्र। **आवर्त्तते** के साथ **न** पृथक् है और **आवर्त्तते** से पूर्वसूचक मिला हुआ ही है, अतः **न आवर्त्तते** और **अनावृत्ति** एक ही भाव को कहते हैं। इनका सीधा अर्थ यह है कि मुक्ति प्राप्त होने पर संसार की भाँति मुक्तिकाल में जन्म-मरण का अभ्यास नहीं होता। मुक्तिकाल में जन्म-मरण का बार-बार चक्र नहीं चलता। इसका इतना ही अर्थ है, परन्तु मुक्ति की अवधि समाप्त होने पर इन शब्दों **न आवर्त्तते** और **अनावृत्ति** की गति ही नहीं। यदि नवीन वेदान्ती इस सरल और स्पष्ट अर्थ को लेते तो आर्ष ग्रन्थों के शुद्ध भाव को प्रकट कर देते। मिथ्या अर्थ करने से उनके मिथ्या अर्थ का खण्डन करना आवश्यक था।

६. **अत्यन्त** शब्द का अर्थ ऋषि ने **बहुत** किया यह ठीक है। यह सर्वथा ग्राह्य है। इसी समुल्लास के अन्त में सांख्य दर्शन के प्रथम सूत्र में यह बात स्पष्ट है-

तदत्यन्तदुःखनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः

अर्थात् दुःख का अत्यन्त छुटकारा अत्यन्त पुरुषार्थ से होता है। यहाँ **पुरुषार्थ** शब्द के साथ आये **अत्यन्त** शब्द का अर्थ सबको **बहुत** ही करना पड़ता है। तब इसी भाँति दुःख **निवृत्ति** के साथ पड़े हुये **अत्यन्त** शब्द का भी यही अर्थ होता है। मनुष्य का पुरुषार्थ ससीम ही रहता है, चाहे जितना बढ़े, सीमा से बाहर नहीं जा सकता। इसी प्रकार दुःख का छुटकारा भी सीमा तक ही होगा। सीमा से अधिक नहीं। इसीलिये न्याय दर्शन में **तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः** कहा है अर्थात् दुःख से अत्यन्त छुटकारे को मुक्ति कहते हैं। जैसे मोक्ष का अर्थ छुटकारा है वैसे ही **निवृत्ति** का भी है। यदि न्याय दर्शन को यह स्वीकार होता कि मुक्ति के पश्चात् दुःख कभी नहीं होगा तो **तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः**

की जगह **तदभावोऽपवर्गः** लिखते। **विमोक्ष** लिखा **अभाव** नहीं। **विमोक्ष** शब्द ही अपने अर्थ को स्पष्ट करता है। मोक्ष का अर्थ छुटकारा है। यद्यपि सुषुप्ति और समाधि में भी दु:ख से मोक्ष होता है, परन्तु वह थोड़ी देर में फिर आ जाता है इसलिए न्याय में मोक्ष ही नहीं कहा और यदि **विमोक्ष** कहते अर्थात् विशेष छुटकारा, तो प्रलयकाल में विशेष छुटकारा होता है, तो वहाँ लक्षण व्याप्त हो जाता। इस दोष को भी दूर करने के लिये **अत्यन्तविमोक्ष** कहा। अर्थात् ३६ हजार बार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का जितना समय है उतने लम्बेकाल तक मुक्ति से जीव नहीं लौटता अर्थात् मुक्ति के इस समय में दु:ख की आवृत्ति नहीं होती। मनुष्य की आयु का मान १०० वर्ष माना गया है। इसी भाँति ब्रह्मलोक प्राप्ति की आयु भी १०० वर्ष है। सृष्टि की आयु और प्रलय की आयु ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष है। यह ब्रह्मलोक मोक्ष में रहने का एक दिन रात्रि है। जैसे १०० वर्ष में ३६००० दिन-रात्रि होते हैं वैसे ही ब्रह्मलोक मोक्ष में आनन्द भोगने के भी १०० वर्ष होते हैं। अत: मुक्ति के १०० वर्ष सृष्टि और प्रलय के ३६००० गुणित हो गये। यही **अत्यन्त विमोक्ष** है। यही **अनावृत्ति** है। यही **न आवर्त्तते** है। जीव के साधन और सामर्थ्य ससीम हैं तो उन साधनों से उत्पन्न फल भी ससीम रहेगा, असीम नहीं हो सकता।

७. जीव को इन्द्रियजन्य ज्ञान एक काल में अनेक नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें मन की सन्निधि आवश्यक है। मन एक समय में एक ही इन्द्रिय के साथ संयुक्त हो सकता है, परन्तु जीव को केवल मानस-ज्ञान में यह बन्धन नहीं। तब जीव एक काल में अनेक ज्ञानों की प्राप्ति और स्मरण करता है।

८. वर्तमान जन्म इससे पूर्व अनेक जन्मों के कर्मों के अनुसार होता है, केवल पूर्वजन्म मात्र से नहीं। इसी भाँति भविष्यत् जन्म भी वर्तमान तथा पूर्वजन्मों के कर्मों के अनुसार मिलेगा।

विशेष- ये टिप्पणियाँ ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के अनुसार हैं, स्वतन्त्र नहीं।

[illegible]

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानु:	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।** दूरभाष - **0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

कोरोना विषाणु (वायरस) का इलाज दैनिक यज्ञ

नवीन मिश्र

पिछले लगभग ६ माह से सम्पूर्ण विश्व में कोरोना विषाणु (वायरस) के कारण कोहराम मचा हुआ है। हमारी धर्म संस्कृति में ऋषियों ने न केवल कोरोना विषाणु (वायरस) बल्कि इससे भी छोटे-छोटे विषाणु (वायरस) जो मनुष्य की लापरवाही से भविष्य में उत्पन्न होंगे, उनका इलाज दैनिक यज्ञ (अग्निहोत्र) के रूप में दे दिया था। आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व जबसे सृष्टि बनी है तबसे इस देश के राजा-महाराजा, ऋषि-महर्षि एवं समस्त गृहस्थी-वानप्रस्थी आदि दैनिक नित्यकर्मों में पञ्च महायज्ञों को किया करते थे। ये पाँचों यज्ञ उनकी दिनचर्या के प्रतिदिन करनेवाले अनिवार्य कर्म होते थे। इन पञ्च महायज्ञों को अपरिहार्य बताते हुए महर्षि मनु ने मनुस्मृति में लिखा है-

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्।।

मनुस्मृति ४.२१

अर्थात् ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव यज्ञ), नृयज्ञ (अतिथियज्ञ) तथा पितृयज्ञ को नित्य करना चाहिए, कभी भी छोड़ना नहीं चाहिए। यहाँ ऋषि-यज्ञ से तात्पर्य ब्रह्मयज्ञ अर्थात् दोनों समय नित्यप्रति सन्ध्योपासना एवं स्वाध्याय आदि करना। दूसरा देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र को पर्यावरण की शुद्धि के लिए प्रातः सायं यथासमय नित्यप्रति करना, तीसरा भूतयज्ञ अर्थात् पशु-पक्षियों का ध्यान रखना एवं उनके लिए नित्य अन्न का भाग निकालना। इसीलिए हमारी संस्कृति में भोजन के समय पहली रोटी गाय के लिए एवं अन्तिम रोटी कुत्ते के लिए निकाली जाती है। चौथा अतिथि-सत्कार अर्थात् साधु-संन्यासी परोपकारी, आप्तपुरुष जो बिना तिथि के कभी भी घर पर आ सकते हैं उनका सत्कार। पितृयज्ञ अर्थात् परिवार में जो अपने से बड़े माता-पिता, दादा-दादी आदि हैं नित्य उनकी सेवा करना अर्थात् उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखना। देश और समाज की समस्त समस्याओं का समाधान इन पञ्च यज्ञों में समाहित है।

इसमें कोरोना की समस्या का निदान **देवयज्ञ** में है। विश्व के सभी प्राणियों-वनस्पतियों के रोगों का निदान देवयज्ञ या अग्निहोत्र के द्वारा किया जा सकता है। जबसे कोरोना की बीमारी आई है तब से बाह्य साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह अच्छी बात है किन्तु पर्यावरण की शुद्धि कैसे हो इस पर विचार नहीं किया गया। सम्पूर्ण विश्व में तालाबन्दी के कारण लोग घरों में बन्द रहे। वाहन नहीं चले जिससे कुछ सीमा तक वायुमण्डल की शुद्धि हुई, जो स्वास्थ्य एवं पर्यावरण सुधार की दृष्टि से अच्छी बात है। किन्तु, हम सभी ने ऋषियों की परम्परा के अनुसार दैनिक यज्ञ (अग्निहोत्र) को दिनचर्या में अपनाया होता तो पर्यावरण शुद्ध होकर समस्त समस्याओं एवं रोगों का समाधान हो जाता।

बहुत से लोग कहते हैं कि वृक्षारोपण करने से पर्यावरण शुद्ध हो जाएगा। हवन में घी-सामग्री मेवा आदि का क्यों अपव्यय करें? उन्हें समझना चाहिए कि पेड़-पौधे लगाना अच्छी बात है उनसे वायुमण्डल में ऑक्सीजन की प्रचुर मात्रा बढ़ेगी। किन्तु पेड़-पौधों में यह शक्ति नहीं है कि जो वायुमण्डल में पहले से दुर्गन्धयुक्त वायु है एवं रोग के विषाणु हैं उन्हें घर से बाहर फेंक सके। इसके विपरीत हवन की वायु में वह शक्ति है जो घर में उपस्थित प्रदूषित वायु एवं रोग के छोटे-छोटे विषाणुओं (वायरसों) को बाहर फेंक सके। जब हम ऋषियों के निर्देशानुसार विधिपूर्वक घी, सामग्री एवं समिधा के उचित अनुपात का ध्यान रखते हुए अग्निहोत्र करते हैं तो हवन में प्रयुक्त रोगनाशक, पुष्टिकारक एवं कीटाणुनाशक पदार्थों की शक्ति हजारों गुना बढ़ जाती है एवं यज्ञ के उच्च तापमान से उस जगह की वायु अत्यन्त हल्की एवं सूक्ष्म होकर प्रदूषित वायु को बाहर फेंक देती है। अग्निहोत्र के प्रभाव से लगभग १२ घण्टे तक उस घर में प्रदूषित वायु प्रवेश नहीं कर सकती है। १२ घण्टे के पश्चात् पुनः सायंकालीन यज्ञ घर-घर में किया जाता था। इस प्रकार १२-१२ घण्टे के लिए वायुमण्डल का शोधन हो जाता था। इसी तरह इस देश में

नित्यप्रति प्रातः-सायं घर-घर में अग्निहोत्र हुआ करता था और सम्पूर्ण देश का पर्यावरण शुद्ध होने से सभी मनुष्य निरोगी एवं दीर्घायु होते थे।

अग्नि में डाले गये पदार्थ घी, सामग्री, मेवा आदि कभी नष्ट नहीं होते हैं बल्कि उनका प्रभाव हजारों गुना बढ़ जाता है। रसायनशास्त्र का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी यह बात अच्छी प्रकार जानते हैं कि पदार्थ अविनाशी है अर्थात् कोई पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता है बल्कि उसका रूप परिवर्तन हो जाता है। आज शुद्ध दूध की कमी होने से शुद्ध देशी घी की समस्या दृष्टिगोचर हो रही है, परन्तु इस देशी घी की कमी की पूर्ति भी अग्निहोत्र से ही सम्भव है। उदाहरणार्थ जब ४-५ चम्मच घी का उपयोग एक व्यक्ति ही करेगा तो उसका थोड़ा सा लाभ उस व्यक्ति को ही मिलेगा किन्तु वही ४-५ चम्मच घी यदि हवन के माध्यम से अग्नि में डाला जाता है तो अग्नि के सम्पर्क में आने से घी के कण छोटे-छोटे परमाणुओं में टूटकर सम्पूर्ण वातावरण में फैलकर अपना उत्तम प्रभाव छोड़ते हैं। जिससे न केवल यज्ञ करने वाले को उसका लाभ मिलता है बल्कि दूर-दूर तक आस-पास रहने वालों को शुद्ध वायु का लाभ मिलता है। इस प्रकार यज्ञ में प्रयुक्त थोड़े से घी-सामग्री से अनेक लोग लाभान्वित हो जाते हैं और घी की कमी की समस्या भी हल हो जाती है।

घी, सामग्री एवं मेवा आदि को अग्नि में डालने से उनका प्रभाव कैसे हजारों गुना हो जाता है। इसको एक मिर्च के उदाहरण से समझा जा सकता है कि जब एक व्यक्ति एक मिर्च का सेवन करता है तो मिर्च का तीखापन उसको प्रतीत होता है और जब उस मिर्च को खरल में कूटते हैं तो परिवार में उपस्थित सभी लोगों को उसका प्रभाव पता चल जाता है। अब यदि उसी मिर्च को अग्नि में डाल देंगे तो आसपास के परिवारों में, दूर-दूर रहने वालों को भी उसी मिर्च के प्रभाव में छींकें आने लगती हैं, क्योंकि अग्नि के सम्पर्क में आने से मिर्च के कण परमाणुओं में टूटने से मिर्च का प्रभाव हजारों गुना बढ़ जाता है। यदि हवन में पुष्टिकारक रोगनाशक एवं स्वास्थ्यवर्धक पदार्थ उचित रीति से डालेंगे तो उनका प्रभाव परमाणुओं में टूटने पर हजारों गुना बढ़कर पुष्टिकारक एवं रोगनाशक सिद्ध होगा। इसीलिए वैदिक युग से लेकर महाभारतकाल तक हमारे समस्त पूर्वज प्रतिदिन प्रातः-सायं यज्ञ किया करते थे। महर्षि देव दयानन्द ने आधुनिक युग में पुनः हमें पञ्च महायज्ञों को जीवन में अपनाने की प्रेरणा दी।

अब अग्निहोत्र में प्रयुक्त सामग्री पर विचार करते हैं जिससे स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार यज्ञ में प्रयुक्त हवन-सामग्री से कोरोना जैसे रोगों को दूर भगाया जा सकता है।

(१) सुगन्धित पदार्थ- कस्तूरी, केसर, अगर तगर, चन्दन, जटामांसी, इलायची, तुलसी, जायफल, जावित्री, कपूर व कपूर कचरी, गुग्गल, नागरमोथा, बालछड़ नरकचूर, सुगन्धवाला लवंग, दालचीनी आदि।

(२) पुष्टिकारक- घी, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

(३) मधुर पदार्थ- खाण्ड, शहद, किशमिश, छुआरे आदि।

(४) रोगनाशक सोमलता अर्थात् गिलोय आदि।

(५) समिधा- चन्दन, पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम एवं बिल्व आदि।

यह हवन-सामग्री जब घी के साथ यज्ञ में प्रयुक्त होगी तो उसका प्रभाव हजारों गुना बढ़ जाएगा। यह सामग्री कोरोना जैसे वायरसों को भगाने में अवश्य ही कारगर होगी, इसको आयुर्वेदशास्त्र एवं रसायनशास्त्र के विद्वान् और भी अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस हवन-सामग्री में प्रयुक्त जावित्री एवं जायफल तो कोरोना विषाणु (वायरस) के लिए काल हैं। जावित्री केवल मसाला ही नहीं है बल्कि यह एक उत्तम एन्टी वायरल ओषधि भी है। कोरोना तो क्या कोरोना से घातक जो विषाणु भविष्य में खोजे जाएंगे, दैनिक-यज्ञ उन सबका काल है।

इस तथ्य को इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि कोरोना जैसे छोटे वायरसों को लाठी, डण्डे, हथौड़े, राइफल या बन्दूक से नहीं मारा जा सकता है, क्योंकि कोरोना माइक्रोस्कोप से देखा जानेवाला अत्यन्त छोटा विषाणु (वायरस) है। इसलिए बड़े-बड़े समस्त हथियार निष्फल हैं, कोरोना की समाप्ति के लिए जो हथियार काम आएगा वह कोरोना जैसा या उससे भी छोटा होना चाहिए। वह हथियार है उपरोक्त सामग्री का हवन में उचित रीति से प्रयोग।

जब हम उचित मात्रा में घी-सामग्री से, उचित रीति से यज्ञ करेंगे तो जावित्री, जायफल, कपूर, तुलसी, गूगल, केसर, गिलोय, दालचीनी, शहद एवं छुआरे आदि छोटे-छोटे परमाणुओं में विखण्डित होकर विषाणुओं को समाप्त करने में सक्षम होते हैं। इसीलिए ऋषिवर देव दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में ''घी-सामग्री आदि पदार्थ हवन में डालने से नष्ट नहीं होते'' इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

''जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न करते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो, जहाँ होम होता है वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष की नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूरदेश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।''

कुछ लोग महँगाई का नाम लेकर दैनिक यज्ञ को महँगा बताते हैं और हवन न करने का एक बहाना मिल जाता है। यह उनका बहुत बड़ा भ्रम है। क्योंकि एक व्यक्ति दैनिक यज्ञ करता है तो वह अपने घर के आसपास दूर-दूर तक वायुमण्डल की शुद्धि करता है जिससे पूरे समाज को यज्ञ का लाभ पहुँचता है। आसपास के लोग कोरोना जैसे विषाणु (वायरसों) से बचे रहते हैं अर्थात् परिवार के साथ सामाजिक निरोगता भी बढ़ती है जिससे अनेक लोग अनावश्यक दवाइयों के खर्च से भी बच जाते हैं। हवन से फैलने वाली सुगन्धि प्रिय लगने लगती है जिससे बीड़ी सिगरेट के धूम्र से घृणा हो जाती है। इस प्रकार वे बीड़ी, सिगरेट एवं गुटका आदि पर होने वाले व्यय से बचे रहते हैं। रोगजनित कीटाणु दैनिक यज्ञ से नष्ट होते रहते हैं, जिससे समस्त संस्थाओं एवं सरकारों का सेनिटाइजेशन का व्यय बचेगा और सबसे बड़ी बात है कि घर-घर में दैनिक यज्ञ होने से वर्षा समय पर होगी। जैसाकि राजा राम के राज्य में होता था। वर्षा उचित एवं समय पर होने से देश में कृषि-सम्पदा बढ़ेगी और समस्त देशवासी धन-धान्य से सम्पन्न हो जाएंगे। उक्त समस्त तथ्यों से स्पष्ट है कि यज्ञ में जो घी एवं सामग्री प्रयोग की जाती है वह उसका अपव्यय नहीं बल्कि सदुपयोग है। दैनिक यज्ञ की इतनी महिमा है कि इससे अन्तरिक्ष जल, वायु और पृथ्वी सभी का शुद्धिकरण हो जाता है जिससे पर्यावरण शुद्ध होने से समस्त जीव आनन्दित होते हैं। आजकल लोग यज्ञ के स्थान पर दीपक जलाते हैं या अगरबत्ती जला देते हैं, यह यज्ञ का विकृत रूप कहा जा सकता है। इसके करने से यज्ञ के लाभ कभी नहीं होते, क्योंकि अगरबत्ती एवं दीपक के धुएँ में भेदक शक्ति नहीं है और यज्ञकुण्ड की तरह इनका उच्च तापमान भी नहीं हो पाता है जिससे अगरबत्ती एवं दीपक में प्रयुक्त पदार्थ एवं घी के कण सूक्ष्म परमाणुओं में टूट सकें। इस कारण दीपक और अगरबत्ती रोग के विषाणुओं (वायरसों) एवं दुर्गन्ध को बाहर फेंकने में सक्षम नहीं है।

हमारी संस्कृति में आदि सृष्टि से लेकर महाभारतकाल तक घर-घर में दोनों समय प्रातः सायं सन्ध्या के साथ अग्निहोत्र की परम्परा रही है। इसके अतिरिक्त श्रावणी, विजयादशमी, दीपावली एवं होली पर चौराहों पर बड़े-बड़े सामूहिक यज्ञ जनसहभागिता से होते थे। जिससे पर्यावरण का नित्य शोधन होता रहता था एवं सभी सुखी एवं निरोगी रहते थे।

अब यज्ञ के विषय में सत्यार्थप्रकाश में वर्णित महर्षि दयानन्द का कथन देखिये-

''प्रत्येक मनुष्य सोलह-सोलह आहुति और छः छः माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिए आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे-महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। जो अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये।''

आइये, हम सब आर्यावर्त्त के वासी ऋषि की भावना को समझें और दैनिक यज्ञ का संकल्प लें और आज से ही घर-घर में दोनों समय नहीं तो कम से एक समय यज्ञ अवश्य करें और विशेष अवसरों पर बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन सामूहिक रूप से करके प्रारम्भ करें और कोरोना जैसी महामारी को शीघ्र दूर भगाने में अपना-अपना योगदान करें और कोई मार्ग नहीं है।

न अन्य पन्था विद्यते अयनाय।

चन्द्रवरदाई नगर, अजमेर।

स्वामी विरजानन्द दण्डी

सोमेश पाठक

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अपने समय में स्वामी विरजानन्द दण्डी जैसा पण्डित भूतल पर कोई दूसरा नहीं था। इसी बात की पुष्टि कभी उनके ही गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी ने भी की थी कि जब स्वामी दयानन्द को दण्डी जी की कुटिया का रास्ता दिखाया था। धन्य होगी वह कुटिया जहाँ कभी ये दोनों गुरु-शिष्य संवाद करते होंगे, धन्य होगा यमुना का वह किनारा जहाँ कभी आर्यसमाज का बीज अंकुरित हो रहा था।

सच पूछिये तो आर्यसमाज की नींव उसी दिन (सन् १८६० ई.) रखी जा चुकी थी। जब दण्डी जी के आदेश पर स्वामी दयानन्द ने यमुना में अपनी किताबें बहाईं थीं। बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना (सन् १८७५ ई.) तो उसका क्रियात्मक रूप मात्र था। ऋषि के सुधार का कार्यक्रम ऋषि के स्वत्व से प्रारम्भ होता है और ऋषि के ऋषित्व का प्रारम्भ दण्डी जी की कुटिया से। नियति ने बाल्यकाल में ही दण्डी जी से चर्मचक्षु हर लिये थे। शायद वह दृश्य जगत् के अदृश्य सत्य का बोध कराना चाहती थी। या शायद वह इस बात का संकेत था कि ज्ञान किसी ज्ञानेन्द्रिय का मोहताज नहीं है।

प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द दण्डी जी महाराज जहाँ एक ओर अत्यन्त विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे वहीं दूसरी ओर अत्यन्त कठोर शिक्षक भी। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अध्ययनकाल की अनेक घटनायें इस बात का प्रमाण हैं। अनेकों बार दण्डी जी के द्वारा स्वामी दयानन्द की ताड़ना की गई। अनेकों बार कुटिया में प्रवेश बन्द किया गया। पर पुनः पुनः उस प्यारे शिष्य की अनुनय-विनय पर गुरु को झुकना ही पड़ता था और शिष्य को गुरुचरणों में स्थान मिल ही जाता था।

इसी बात को '**श्रीमद्दयानन्द प्रकाश**' के लेखक ने कुछ इन शब्दों में लिखकर अपनी कलम तोड़ी है कि ''जैसे पवन कम्पित प्रफुल्ल पद्म पर से भ्रमर उड़कर फिर पराग के अनुराग से वहीं आ बैठता है, ऐसे ही गुरु-गुण-गरिमा से मोहित श्री दयानन्द जी तिरस्कार होने पर भी गुरु चरणों के समीप बार-बार आ जाते थे।''

पिछले २००० वर्षों के इतिहास में दण्डी जी पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने वैदिक परम्पराओं और आर्ष ग्रन्थों के पुनरुद्धार की नींव डाली थी। दण्डी जी महाराज की ऋषियों प्रति ऐसी अटूट श्रद्धा थी कि वे ऋषियों के ग्रन्थों को छोड़कर अन्य किसी ग्रन्थ को पढ़ना-पढ़ाना पाप समझते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि ऋषियों के ग्रन्थों का सहारा लेकर अन्य ग्रन्थों की रचना नहीं की जानी चाहिये और ना ही ऋषियों के ग्रन्थों की टीकायें होनी चाहिये। ऐसा करने से बड़ा अनर्थ होता है। वे इस बात के इतने प्रबल पक्षधर थे कि उन्होंने अपने लिखे ग्रन्थ भी यमुना में बहाने के लिये दे दिये थे। उन्होंने राजा रामसिंह को सार्वभौम सभा विवरण-पत्र लिखा था जिसके कुछ उद्धरण हम आगे दे रहे हैं। जिनसे पाठकों को दण्डी जी के ही शब्दों में उनकी मान्यताओं का परिचय मिलेगा।

१- यह बात समझनी चाहिये कि पुस्तकोत्थ में धर्म का नाश है, क्योंकि धर्म का वक्ता जीवित पुरुष होता है, उसका पुस्तकोत्थ होने से फिर उसका प्रमाण ठहर जाता है। पुस्तक स्थिति में धर्म स्थिति है। पुस्तकोत्थ क्या है कि उनका (ऋषि-पुस्तक) नाम लेकर पुस्तक का पुस्तकान्तर बनाना।

२- मूर्ख लोग पुस्तक लिख करके एक-एक पुस्तक के असंख्यात बेशुमार टीका पुस्तक बनाते हैं।

३- जिस ऋषि ने पुस्तक बनाया, वह ऋषि शब्द रूप होके अपने बनाये पुस्तक में वर्तमान है, जो विद्वान् हो यानी समझदार होय और वाग्मी होय यानी प्रगल्भवक्ता होय उसकी वाक् ऋषिवाक् है।

४- जबसे यह चाल चली कि पुस्तक की व्याख्या के वास्ते दूसरा पुस्तक होता है, उसका फिर और होता है तब से उस मूल पुरुष का प्रमाण ही न रहा, कोई किसी का गुरु न रहा। जब यह बात इस तरह भई तब देवभाषा के पढ़ने वाल गुरुरहित अशिष्ट नालायक हुवे।

५- जो ऋषि ने लिख दिया तो लिख दिया फिर लेख किसी कू न करना। वही वेदादिक शब्दशास्त्र के उदाहरण हैं।

६- ऋषि पुस्तक का नाम मूल पुस्तक धरै है, अपने बनाये पुस्तक नाम टीका पुस्तक धरै है। यह व्यवहार शास्त्र में नहीं होना चाहिये। टीका तो मस्तक पे लगै है। अपनी जूठन अशुद्ध वाक्य ऋषि के मस्तक पै लगावै है। याते ब्रह्महा (ब्रह्म हत्यारा) चाण्डाल ऐसी हरकत करने वाला होता है।

७- जब शब्द-शास्त्र के पढ़ाने वाला सर्वभूमि में कोई एक भी नहीं रहता है तब मिथ्या पण्डित लोग सनातन पुस्तकन की दुर्दशा करते हैं अपने बनाये पुस्तक ऋषि पुस्तक में मिला देते हैं। यथा सूने घर में कुत्ता खोपकै बैठता है।

इन बातों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दण्डी जी के अनुसार ऋषियों के अतिरिक्त किसी को भी ग्रन्थ लेखन का अधिकार नहीं है। यहाँ यह स्मरण रहे कि ये बातें शिक्षा से लेकर वेदपर्यन्त सद्विद्याओं और सद्ग्रन्थों के विषय में कही गयी हैं। क्योंकि इनके अतिरिक्त और जो भी बातें लिखी गयी हैं अथवा लिखी जा रही हैं वे तो दण्डी जी के अनुसार पुस्तक होने अथवा ग्रन्थ होने की अधिकारिणी ही नहीं होगी। अब अगर कोई यह कहे कि ऋषियों की लिखी पुस्तकों के गूढार्थ बच्चे तथा आम लोग नहीं पढ़ सकते इसलिये उनके लिये सरल रूप में लिख देनी चाहिये तो उसके लिये दण्डी जी यह कहते हैं कि-

सोऽध्यगीष्ट कथं बालो गूढार्थमृषि पुस्तकम्।
नाधीतं यदि तेनापि सत्यमुक्तं धिगस्तु तम्।।

जिसने वे पुस्तकें पढ़ लीं उसने कैसे पढ़ लीं? और अगर उसने भी नहीं पढ़ पाईं तो धिक्कार है उसे। अर्थात् जो ऋषियों की पुस्तकें नहीं पढ़ सकते वे दण्डी जी के अनुसार धिक्कार के योग्य हैं।

इस संक्षिप्त लेख में मैं दण्डी जी के जीवन को प्रस्तुत कर सकूँ यह मेरी क्षमता के बाहर की बात है। अत: पाठकों से यह निवेदन करता हूँ कि वे दण्डी जी की प्रेरक जीवनी को जरूर पढ़ें जो कि अनेक लेखकों द्वारा लिखी जा चुकी है। जिनमें पं. लेखराम, श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी वेदानन्द जी, पं. मुकुन्ददेव, डॉ. रामप्रकाश आदि प्रमुख हैं।

यहाँ इतना ही कहकर अपनी बात समाप्त करूँगा कि महापण्डित, वेदवेदांगाचार्य, धर्मप्रवर्तक प्रक्षाचक्षु दयानन्द गुरु स्वामी विरजानन्द दण्डी जी महाराज १४ सितम्बर सन् १८६८ ई. को लगभग ९० वर्ष की आयु में इस संसार से कूच कर गये अथवा ऋषि दयानन्द के शब्दों में कहें तो

''व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।''

ऋषि उद्यान, अजमेर।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-संपादक**

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

शोक समाचार

विनम्रता एवं सरलता की प्रतिमूर्ति थे स्वामी धर्ममुनि जी

आज हम सबका दुर्भाग्य है कि कोरोना महामारी के कारण हम उनकी अन्तिम यात्रा में भी सम्मिलित नहीं हो सके। कुछ समय से श्वास रोग से पीड़ित होने के कारण तथा अन्तिम दो दिनों में कोरोना के संक्रमण से सक्रंमित होने के कारण २१.०६.२०२० को उन्होंने अन्तिम श्वास ली। यह वह दिन था जिस दिन विश्व का बहुत बड़ा सूर्यग्रहण था। चन्द्रमा ने सूर्य को कुछ समय के लिए लगभग ढक लिया था, परन्तु मृत्यु रूपी छाया ने हमारे प्रिय स्वामी को सदा-सदा के लिये ढक लिया। अब वह जीवात्मा उसी परमात्मा के चरणों में चली गई जिसके लिये वह अपने जीवन में सदैव सद्कार्यों में व्यस्त रहती थी।

स्वामी धर्ममुनि जी एक ऐसे सन्त थे जिन्हें अहंकार दूर-दूर तक भी नहीं छू सका। किसी प्रकार का मोह उन्हें पीड़ित नहीं कर सका। देश में कई अन्य धार्मिक आश्रम पाखण्ड, आडम्बर और अपार धन के अड्डे हैं, वे धर्म के नाम पर पाप करते हैं, परन्तु स्वामी धर्ममुनि जी के ये दोनों आश्रम चाहे वह आत्मशुद्धि आश्रम बहादुरगढ़ हो या अखेराम सरदारों देवी आत्मशुद्धि आश्रम फरुखनगर हो, दोनों आश्रम आत्म-शुद्धि में ही निरन्तर लगे हुए हैं।

संसार में सबसे कठिन कार्य होता है इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, परन्तु यह वह सन्त था जिसने अपने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके परमात्मा की गोद में बैठने का सदैव आनन्द लिया। भक्ति एवं आराधना का आनन्द लेते समाज को सत्यपथ की राह पर चलने की प्रेरणा देना ही उनका परम उद्देश्य था।

वे स्वाध्यायशील विद्वान् थे, उनकी पत्रिका आत्मशुद्धि पथ में उनका सम्पादकीय सदैव समाज को प्रेरणा देता रहता था। कई बार समय न मिलने पर मैं उनकी पत्रिका को पूरा नहीं पढ़ पाता था, परन्तु उनका सम्पादकीय पढ़कर ऐसा लगता था कि हमने जीवन की सत्यता को पा लिया है।

मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि उन्होंने काम और क्रोध पर पूर्णतया विजय प्राप्त कर ली थी। उन्होंने लोभ और मोह का निर्मलीकरण करके कितने ही दीन-दुखियों, पथभ्रष्टों को मार्गदर्शन दिया और सन्मार्ग दिखाया, इस बात का प्रमाण बहादुरगढ़ ही नहीं पूरा हरियाणा और पूरे राष्ट्र के आर्यजगत् से जाना जा सकता है।

कुछ दिन पूर्व ट्रस्ट की मीटिंग मान्यवर श्री दर्शन अग्निहोत्री मन्त्री आत्मशुद्धि आश्रम बहादुरगढ़ के कार्यालय देहली में चल रही थी। तभी हँसी हँसी में श्री राजवीर जी, श्री सत्यपाल वत्स जी और मैंने कहा कि स्वामी जी इस आश्रम को आप अपने किस सम्बन्धी को दे जाओगे तो स्वामी जी ने हँसते हुए कहा कि बन्धुओ, ''यह आश्रम समाज का है, समाज को समर्पित करुँगा हम सबके आग्रह से उन्होंने अपने एक साधारण से सेवक श्री विक्रम देव आर्य को इसका संचालक घोषित कर दिया। परिवार का मोह उन्हें नहीं था।'' **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्** (यजुर्वेद ४० वें अध्याय के प्रथम मन्त्र) को अपने जीवन में अपनाते हुए आज वह हमारे बीच नहीं रहे।

मुझे यह लिखते हुए बिल्कुल भी संकोच नहीं हो रहा कि मैं उन्हें बहुत गहराई से और अत्यन्त समीपता से जानता हूँ। मैं यह दावा तो नहीं करता कि मैं उनके सम्पूर्ण गुणों से परिचित हूँ, परन्तु इतना तो विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मैंने उन्हें जितना जाना उसी के आधार पर कह सकता हूँ कि स्वामी जी महाराज एक अति उज्ज्वल चरित्र के स्वामी थे। अपनी धुन के पक्के, दृढ़ ईश्वर विश्वासी और शिव संकल्प के धनी थे। कृतज्ञता उनके रोम-रोम में व्याप्त थी। कभी कोई व्यक्ति अपमान भी कर जाये तो उसके प्रति वह कभी भी द्वेष की भावना नहीं रखते थे। उन्होंने रसना पर पूर्ण विजय प्राप्त कर रखी थी। वह जो भी प्रवचन करते थे उसे अपनी मौन सम्बन्धी प्रयोगशाला में पहले सिद्ध करते थे। वह अपने सिद्धान्तों

को ही नहीं बल्कि अपनी कसौटियों को भी ऋषि दयानन्द की कसौटियों पर परखा करते थे। कोई विशेषण उन्हें विशेष नहीं बनाता बल्कि उनसे जुड़नेवाला प्रत्येक विशेषण विशेष हो जाता था।

स्वामी जी ने अपने अल्पसाधनों के होते हुए भी वर्ष में चार-चार शिविर लगाना, प्रत्येक वर्ष एक सप्ताह का वार्षिक उत्सव करना, जन्मदिन (२० नवम्बर) को राष्ट्र को समर्पित रूप में मनाना, बाल सदन, वृद्धाश्रम, गोसेवा, नेत्र संरक्षण कार्यक्रम, साहित्य सृजन, साहित्य एवं पत्रिका प्रकाशन आदि बहुत से कार्य उन्होंने अपने जीवन में किये हैं, जो हमारे लिए सदैव प्रेरणा के स्रोत रहेंगे।

अपने विनीत भावों को उनके प्रति श्रद्धावनत होकर प्रकट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उस महान् आत्मा के कुछ अंश हम ग्रहण कर सकें, यही हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

आर्यजगत् की उच्चकोटि की धर्मोपदेशिका थीं
पूज्या बहिन डॉ. उषा शर्मा 'उषस'

जगत् में मानव का आगमन किसी विशेष उद्देश्य से होता है किन्तु इस बात को लोग प्रायः जान नहीं पाते हैं। परमात्मा की सृष्टि में शृंगार बनकर कुछ विशेष आत्मायें प्रकट होती हैं, जिनसे यह धरा धन्य हो जाती है, राष्ट्र और समाज गौरवान्वित हो जाता है, शास्त्र सार्थक हो जाते हैं ऐसी ही संघर्षशील महिला का नाम था डॉ. उषा शर्मा 'उषस'।

डॉ. उषा जी ने सदैव परिस्थितियों को चुनौती दी है। उन्होंने अपने कार्यों से सिद्ध कर दिया कि परिस्थितियाँ कुछ समय तक व्यक्ति को रोकती हैं, परन्तु दृढ़ निश्चयी व्यक्ति परिस्थितियों का दास नहीं बनता। ऐसी विपत्ति रूपी विद्यालय में पढ़कर उषा जी सोने से कुन्दन बनती चली गईं।

आप एक अच्छी विदुषी, वक्ता, गीतकार, संगीतकार थीं। आपने अपना काफी समय विदेशों विशेषकर मॉरीशस में राष्ट्र पुरोहित बनकर धर्म का प्रचार किया। वहाँ के राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री तक आपका सम्मान करते थे। आप अपने जीवन को धन्य कर गईं। हम उनसे कुछ प्रेरणा ले सकें, यही प्रभु से प्रार्थना है।

श्री रामनाथ सहगल
तुम कभी भुलाये नहीं जा सकते

रामनाथ सहगल एक ऐसा व्यक्तित्व था जो जहाँ खड़ा हो जाता था, पूरा आर्यजगत् उनके पीछे चलने को आतुर रहता था। आपने टंकारा ग्राम को पूरे विश्वपटल पर एक विशेष स्थान प्रदान कर दिया। आप डी.ए.वी. के प्रेरणा स्रोत रहे। मेरा परिचय १९६५ में जब टंकारा यात्रा के लिये पहली ट्रेन चली थी, हुआ था। अपने कार्यकर्त्ताओं को वह सदा सम्मान देते थे। उनमें नेतृत्व का अद्भुत गुण था, अपनी मधुर वाणी से सबको सहज ही अपना बना लेते थे। ऐसे महामानव धरा पर कभी-कभी आकर समाज को एक उत्तम दिशा दे जाते हैं। ऐसे महामानव को शत शत नमन।

कन्हैयालाल आर्य, मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com